वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५९ अंक ७
जुलाई २०२१

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जुलाई २०२१; आषाढ़, सम्वत् २०७८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ७

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. गुरुं गुरूणां भज रामकृष्णम् २९३
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) २९३
३. सम्पादकीय : त्राही त्राही गुरुदेव ! २९४
४. (कविता) करो मन गुरु चरनन से प्रीति (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), गुरु शरण में होकर बदलो जीवन को उल्लास में (बाबूलाल परमार) २९६
५. भारत की नारियाँ (स्वामी विवेकानन्द) २९७
६. (कविता) सद्गुरु कृपा सुधा सरिता में (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) २९९
७. सारगाछी की स्मृतियाँ (१०५) (स्वामी सुहितानन्द) ३००
८. गुरु की खोज (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) ३०२
९. रामराज्य का स्वरूप (३/२) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ३०५
१०. (बच्चों का आँगन) कायरो ! शीघ्र ही वापस लौट जाओ (स्वामी गुणदानन्द) ३०८
११. श्रीरामकृष्ण-गीता (१) (स्वामी पूर्णानन्द) ३०९
१२. (प्रेरक लघुकथा) सूर कहे वही बड़भागी, जो होवे त्यागी-बैरागी (डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर) ३१६
१३. (युवा प्रांगण) क्षमाशील बनें, किन्तु कायर नहीं (डॉ. निधि श्रीवास्तव) ३१७
१४. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (४३) (स्वामी अखण्डानन्द) ३१८
१५. आध्यात्मिक जिज्ञासा (६७) (स्वामी भूतेशानन्द) ३२०

ISSN 2582-0656

१६. प्रश्नोपनिषद् (१४)
(श्रीशंकराचार्य) ३२२
१७. वही भाग्यशाली है, जो पूर्ण हो गया
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ३२३
१८. भगवान श्रीजगन्नाथ और श्रीरामकृष्ण
(स्वामी तन्निष्ठानन्द) ३२४
१९. गीतातत्त्व-चिन्तन – १ (दशम अध्याय)
(स्वामी आत्मानन्द) ३२९
२०. साधुओं के पावन प्रसंग (३१)
(स्वामी चेतनानन्द) ३३२
२१. समाचार और सूचनाएँ ३३४

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दी गई स्वामी विवेकानन्द जी की यह 3D मूर्ति छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में प. रविशंकर विश्वविद्यालय के सामने मुख्यमार्ग पर अवस्थित है।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

*विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : **www.rkmraipur.org***

जुलाई माह के जयन्ती और त्यौहार

२४	गुरु पूर्णिमा
५,२०	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री एल.एन.दास, १५२, सुंदर नगर रायपुर (छ.ग.)	५,०००/-
श्री हरिराम गुर्जर, रतन्दा, जोधपुर (राजस्थान)	२०,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६५८.	श्री केजूराम साहू, वी.आई.पी. रोड, रायपुर (छ.ग.)	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, शेर,पापुम परे (अ.प्र.)
६५९.	श्री चन्द्रशेखर रीना पाण्डेय, वेस्ट विनोद नगर,दिल्ली	लाईब्रेरी, राजकीय इंटर कॉलेज, भागटोला, अल्मोड़ा (उ.ख.)
६६०.	श्री केजू राम साहू, पो.-अमाली, जि.-धमतरी (छ.ग.)	शास. मीडिल स्कूल, अमाली (नगरी सिहावा) धमतरी (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

SMS: **SOLAR to 58888**

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ जुलाई २०२१ अंक ७

गुरुं गुरूणां भज रामकृष्णम्

निरस्तमोहं परिपूर्णकामं भवाम्बुधेः पारदपारपोतम्।
नवं नवं रूपमिहाददानं श्रीरामकृष्णं भजतां न दुःखम्।।
सदा प्रशान्तं सकलैकसेव्यं ऐश्वर्यवैराग्यनिधानभूतम्।
नित्यैकरूपं समदर्शिनं तं गुरुं गुरूणां भज रामकृष्णम्।।

जिन्होंने सब प्रकार के मोह का त्याग किया है, जो परिपूर्ण काम हैं, जिनके चरण रूपी नाव से संसार रूपी समुद्र पार किया जा सकता है, जो अभी भी इस संसार में नया-नया रूप धारण कर रहे हैं, उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव का भजन जो लोग करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का दुख नहीं रहता।

सर्वदा प्रशान्त, सबके लिये एकमात्र सेव्य, ऐश्वर्य और वैराग्य के निधिस्वरूप, नित्य एकरूप और गुरुओं के भी गुरु उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव का भजन करो।

पुरखों की थाती

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।
नानारोगो भवेत्तस्य किंचिद्-योगो न सिध्यति।।७२८।।

– जो व्यक्ति मिताहार अर्थात् भोजन में संयम के बिना ही योग का अभ्यास शुरू कर देता है, उसे कई तरह के रोग हो जाते हैं; योग की कोई सिद्धि नहीं होती। (घेरण्ड संहिता)

आहारस्य च भागौ द्वौ तृतीयमुदकस्य च।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।।७२९।।

– पेट का दो भाग अर्थात् आधा हिस्सा अन्न से भरे, तीसरा भाग जल से भरे और चौथे अंश को वायु के संचार हेतु खाली छोड़ दे। (संन्यास-उपनिषद्)

अन्नेन पूरयेद् अर्धं तोयेन तु तृतीयकम्।
उदरस्य तुरीयाशं संरक्षेद् वायुचारणे।।७३०।।

– उदर के आधे भाग को अन्न से, तीसरे भाग को जल से और उसके चौथे भाग को वायु के संचार हेतु रिक्त रहने दे। (घेरण्ड संहिता)

सम्पादकीय

त्राहि त्राहि गुरुदेव !

राजा निमि ने योगीश्वरों की सभा में यह प्रश्न पूछा –

यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ।।[१]

– हे महर्षिजी ! इस भगवान की माया को पार करना उन लोगों के लिये तो बहुत ही कठिन है, जिनका मन अपने वश में नहीं है। अब आप कृपा करके यह बताइये कि शरीरादि में आत्मबुद्धि रखनेवाले और स्थूलबुद्धिवाले लोग इस माया को अनायास ही कैसे पार कर सकते हैं?

राजा निमि के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए चौथे योगीश्वर प्रबुद्धजी ने संसारी लोगों की तृष्णा का वर्णन किया कि कैसे लोग सुखप्राप्ति और दुखनिवृत्ति हेतु बड़े-बड़े कार्य करते हैं, किन्तु विवेक के अभाव में उन कर्मों का परिणाम उन्हें विपरीत ही मिलता है, सुख के बदले दुख ही मिलता है।

विवेकत: अनुशीलन से यह ज्ञात हो जाएगा कि धन न हो तब दुख, मिल जाय, तो संरक्षण करने और चोरी के भय से दुख और अन्त में यह आत्मा के मृत्युस्वरूप ही है –

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।[२]

इसके बाद योगीश्वर प्रबुद्धजी ने कहा कि इसी प्रकार गृह, पुत्र, स्वजन-सम्बन्धी, पशु आदि भी अनित्य और नाशवान हैं। इनके रहने पर भी शान्ति नहीं मिल सकती। ये सभी माया हैं, माया के रहते शान्ति नहीं मिल सकती। इस माया से पार जाने के लिये क्या करना चाहिए? ऋषि ने कहा जो परम कल्याण चाहता है, जो श्रेयप्राप्ति का जिज्ञासु है, उसे गुरुदेव की शरण में जाना चाहिए। व्यासजी ने बड़ा सुन्दर श्लोक लिखा –

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।[३]

– अत: परम श्रेय के जिज्ञासु को गुरुदेव की शरण में जाना चाहिये।

संसार में बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो बड़े गर्व से कहते हैं कि मुझे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं हैं। लेकिन इतिहास साक्षी है कि बिना किसी के मार्गदर्शन में आज तक आध्यात्मिक तो दूर की बात है, कोई सांसारिक महान कार्य सम्पन्न नहीं हुआ। यहाँ तक कि एकलव्य और कर्ण जैसे पुरुषार्थी योद्धाओं को भी गुरु की स्वीकृति लेनी पड़ी थी और गुरु के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करना पड़ा था।

छठवें योगेश्वर श्रीआविर्होत्रजी ने भी राजा निमि को कहा था कि जो व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र हृदयग्रन्थि को खोलना चाहता है, उसे वैदिक और तान्त्रिक; दोनों प्रकार से केशव की आराधना करनी चाहिए। पहले सेवा आदि के द्वारा आचार्य से, गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त करे, फिर उनसे अनुष्ठान-पद्धति सीखकर जो मूर्ति प्रिय लगे, उससे पुरुषोत्तम भगवान की पूजा करे –

लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमः ।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः ।।[४]

आध्यात्मिक जगत में गुरु की अनिवार्यता

आध्यात्मिक जगत में बिना गुरु के कोई साधना नहीं हो सकती, यह निर्विवाद स्वीकृत है। प्रश्न यह है कि आध्यात्मिक जीवन में गुरु कैसे हों, जो हमें माया से पार कर सकें, कैसे उन्हें पहचानें कि ये हमें हमारे लक्ष्य तक सुरक्षित पहुँचा सकते हैं। यहीं पर संसार में बहुत-से लोग

भ्रमित हो जाते हैं और सुयोग्य निर्देशन के बिना लक्ष्य से वंचित हो जाते हैं। अत: गुरु के सम्बन्ध में कुछ बातें अवश्य ध्यान देने योग्य हैं।

गुरु कैसे हों?

योगेश्वर प्रबुद्धजी राजा निमि को माया से पार करने के प्रसंग में गुरु के लक्षण को बताते हैं –

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।।[५]

– गुरुदेव शब्दब्रह्म – वेदों के पारदर्शी विद्वान हों, जिससे वे शिष्य को ठीक-ठीक समझा सकें और साथ ही परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी भी हों, ताकि अपने अनुभव से प्राप्त रहस्यों को बता सकें और उनका चित्त शान्त हो, विशेष रूप से व्यवहार के प्रपंच में प्रवृत्त न हो। मुण्डकोपनिषद में भी कहा गया है –

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।[६]

– उस नित्य वस्तु का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ही पास जाना चाहिए। इस प्रकार आध्यात्मिक गुरु वरण करते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

गुरु साक्षात् नररूपी भगवान हैं

जीवन में गुरु की आवश्यकता का बोध होना और गुरु का मिल जाना ईश्वर-कृपा से ही सम्भव है, किन्तु गुरु मिलने के बाद भी उन पर पूर्ण श्रद्धाभक्ति करते हुए उनके उपदेशानुसार जीवन-यापन करने में बड़े-बड़े साधक भी विफल हो जाते हैं। अत: गुरु के प्रति जीवन में एक सर्वोच्च दृष्टिकोण और परमोच्च धारणा बनायें, जिससे कभी भी गुरु के प्रति अश्रद्धा न हो। गुरु और इष्ट भगवान में कोई भेद नहीं है, दोनों एक हैं। गुरु नर रूप में भगवान हैं। देवर्षि नारदजी ने नृप युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहा था –

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्।।
एष वै भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम्।।[७]

– हृदय में ज्ञान का दीपक जलानेवाले साक्षात् भगवान ही हैं, जो दुर्बुद्धि पुरुष उन्हें मनुष्य समझता है, उसका समस्त शास्त्र-श्रवण हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बड़े-बड़े योगेश्वर जिनके चरण-कमलों का अनुसन्धान करते रहते हैं, प्रकृति और पुरुष के अधीश्वर वे स्वयं भगवान ही गुरुदेव के रूप में प्रकट हैं। इन्हें लोग भ्रम से मनुष्य मानते हैं।

यदि गुरुदेव के प्रति हमारी धारणा स्पष्ट हो कि साक्षात् भगवान ही हमारे गुरु के रूप में हमारे समक्ष खड़े हैं, तो हम पूर्ण श्रद्धा-भक्ति से उनके उपदेशों का अनुगमन करेंगे और फिर किसी विचलन की सम्भावना नहीं रहती। पूर्ण श्रद्धा से ही गुरु-कृपा प्राप्त होती है।

गुरुदेव की भक्ति का फल

गुरु-भक्ति से क्या होता है? इसका बहुत विस्तृत वर्णन हम छोड़ दें, तो साररूप में गुरुभक्ति सर्वरोगहर, सर्वसुखप्रद है। गुरुदेव की महती भक्ति का वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं – हे धर्मराज ! संकल्प-त्याग से काम को, कामनात्याग से क्रोध को, अर्थ को अनर्थ समझकर लोभ को और तत्त्व-विचार से भय को जीत लेना चाहिए। अध्यात्म-विद्या से शोक-मोह पर, सन्तों की उपासना से दम्भ पर, मौन से योग के विघ्नों पर, तन-प्राणादि की निष्चेष्टा से हिंसा पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। आधिभौतिक दुख को दया से, आधिदैविक वेदना को समाधि से, आध्यात्मिक दुख को योगबल से और निद्रा को सात्त्विक भोजन, स्थान, संग आदि के सेवन से जीत लेना चाहिए। सत्त्वगुण के द्वारा रजोगुण और तमोगुण पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। किन्तु श्रीगुरुदेव की भक्ति से साधक इन सभी दोषों पर सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता है –

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्।।[८]

अत: सब ओर से मन को समझा-बुझाकर गुरुदेव के वचनों में निष्ठावान होना चाहिए और उनकी सेवा के द्वारा उनकी कृपा प्राप्त कर जीवन को धन्य करना चाहिए। जब सुदामाजी द्वारिका के राजमहल में पधारे थे, तब भगवान श्रीकृष्ण ने विद्यार्थी-जीवन के प्रसंगों का स्मरण कर गुरु के सन्दर्भ में बड़ी विलक्षण बात कही थी – हे मित्र ! जन्मदाता पिता प्रथम गुरु हैं। उपनयन संस्कार कर सत्कर्म की शिक्षा देनेवाले दूसरे गुरु हैं। वे दोनों मेरे समान पूज्य हैं। ज्ञानोपदेश कर परमात्मा को प्राप्त करानेवाले गुरु तो मेरा स्वरूप ही हैं। ...मैं गृहस्थ के पंचमहायज्ञादि से, ब्रह्मचारी के उपनयन-वेदाध्ययनादि से, वानप्रस्थी की तपस्या से

सर्व-उपरत संन्यासी से उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेव की सेवा-शुश्रूषा से सन्तुष्ट होता हूँ –

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा।।[९]

आगे भगवान कहते हैं – इसलिये गुरु-ऋण से मुक्त होने के लिये सत्शिष्य का इतना ही कर्तव्य है कि वह विशुद्ध भाव से अपना सब कुछ गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दे –

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम्।
यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ।।[१०]

भगवान श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं – उद्धव ! –

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमतः सम्पद्य चात्मानमथ त्यजाश्रम्।।[११]

– इस प्रकार गुरुदेव की उपासनारूप अनन्य भक्ति के द्वारा अपनी ज्ञान-कुल्हाड़ी तीखी कर लो और उससे धैर्य एवं सावधानी से जीव-भाव को काट डालो। फिर परमात्मस्वरूप होकर उस वृत्तिरूप अस्त्रों को भी छोड़ दो और अपने अखण्ड स्वरूप में ही स्थिर रहो।

गुरुदेव द्वारा प्रसन्न होकर वैकुण्ठ धाम प्रदान

गुरुदेव की निष्ठा से सेवा, पूजा और भक्ति करने से वे हृदय से प्रसन्न होते हैं। गुरु जब प्रसन्न होते हैं, तब अपनी सारी आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने प्रिय शिष्य को प्रदान करते हैं, जैसे सन्दीपनी ने कृष्ण को, विश्वामित्रजी ने श्रीराम को और श्रीरामकृष्ण देव ने स्वामी विवेकानन्द को अपना सब कुछ प्रदान किया था। गुरु-सेवा से प्रसन्न होकर गुरुदेव भक्त को वैकुण्ठ धाम दे देते हैं –

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम्।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम्।।[१२]

– चिन्तामणि केवल लौकिक सुख दे सकती है और कल्पवृक्ष अधिक-से-अधिक स्वर्गीय सम्पत्ति दे सकता है। परन्तु गुरुदेव प्रसन्न होकर भगवान का योगिदुर्लभ नित्य वैकुण्ठ धाम दे देते हैं।

अतः भव-तापदग्ध मानव को इस ज्वाला और भवचक्र से मुक्ति हेतु साक्षाद् गुरुदेव भगवान के पास जाकर 'त्राहि त्राहि गुरुदेव !' कहकर उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना करनी चाहिए – हे शरणागतवत्सल प्रभो! आप हमें इस दुस्तर भवसिन्धु से रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण हूँ!

ॐॐॐ

सन्दर्भ सूत्र – **१.** श्रीमद्भागवत ११/३/१७ **२.** वही, ११/३/१९ **३.** वही, ११/३/२१ **४.** वही, ११/३/४८ **५.** वही, ११/३/२१ **६.** मुण्डकोपनिषद् १/२/१२ **७.** श्रीमद्भागवत् ७/१५/२६-२७ **८.** वही, ७/१५/२५ **९.** वही, १०/८०/३४ **१०.** वही, १०/८०/४१ **११.** वही, ११/१३/२४ **१२.** भागवत माहात्मय, श्लोक ८

कविता

करो मन गुरु चरनन से प्रीति

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

करो मन गुरु चरनन से प्रीति ।
भव-सागर से नित तरनन की, यही है सुन्दर रीति ।।
गुरु बिन ज्ञान नहीं जीवन में, मिटे न कभी भव-भीति ।
गुरु ही हैं जीवन के रक्षक, बढ़ाते हैं प्रभु-प्रीति ।।
गुरु हैं नित शुभमतिगतिदायक, हटाते प्रीति अनीति ।
गुरु ही सचमुच ज्ञानसूर्य हैं, कराते सत्य प्रतीति ।।
गुरु के चरणों में नित वंदन, यही है जीवन-नीति ।
गुरु-पद प्रेम परम सुखदायी, बढ़त जाय प्रभु-प्रीति ।।

कविता

गुरु शरण में होकर बदलो जीवन को उल्लास में

बाबूलाल परमार

आये थे तुम हरि भजन को ओटन लगे कपास रे ।
दुर्लभ मानव जीवन पाकर बैठे रहे उदास रे ।।
खाने-पीने और कमाने, लगे रहे दिन-रात रे ।
कभी न बैठे सत्संगत में न सुनी एक भी बात रे ।।
कभी न थोड़ा ध्यान लगाया, ईश्वर की अभिलाष में ।
गाफिल बने रहे तुम हरदम नश्वर भोग-विलास में ।।
गुरु शरण में होकर बदलो, जीवन को उल्लास में ।
बाबूलाल सत्संग में उनके, हरि-दर्शन है पास में ।।

भारत की नारियाँ

स्वामी विवेकानन्द

(यह व्याख्यान स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिका के केम्ब्रिज नगर में १७ दिसम्बर, १८९४ ई. को दिया था। इसे मिस फ्रांसिस विल्लार्ड के स्टेनोग्राफर ने लिपिबद्ध किया। यह स्वामीजी की Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में प्रकाशित है। इसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

(गतांक से आगे)

अब हम महान स्मृतिकार मनु के प्रसंग पर आते हैं। उनके ग्रन्थ में बालक की शिक्षा के विषय में सविस्तार चर्चा हुई है। स्मरणीय है कि आर्य बालक चाहे जिस भी जाति का हो, उसकी शिक्षा अनिवार्य थी। मनु ने बताया कि एक बालक को कैसे शिक्षा दी जाय और साथ ही वे कहते हैं, ''इसी पद्धति से ठीक बालकों के समान ही कन्याओं की भी शिक्षा होनी चाहिए।''

प्राय: ही मेरे सुनने में आता है कि नारी की निन्दा करने वाली अनेक उक्तियाँ भी मिलती हैं। मैं मानता हूँ कि हमारे पवित्र ग्रन्थों में ऐसे अनेक वाक्य मिलते हैं, जिनमें नारियों के मोहिनी पहलू की निन्दा की गयी है। तुम स्वयं भी उन्हें देख सकते हो। परन्तु ऐसी भी अनेक उक्तियाँ हैं, जिनमें नारियों को ईश्वर की शक्ति के रूप में महिमान्वित किया गया है। जिनमें कहा गया है, जिस भवन में नारी का एक बूँद भी आँसू गिरता है; उसमें देवता कभी प्रसन्न नहीं होते और वह गृहस्थी बरबाद हो जाती है। हिन्दू धर्म में – सुरापान, नारीवध और ब्राह्मण हत्या, ये घोरतम अपराध माने गये हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि (हमारे कुछ ग्रन्थों में) निन्दात्मक उक्तियाँ विद्यमान हैं; परन्तु यहाँ पर मैं इस आधार पर हिन्दू ग्रन्थों की उत्कृष्टता का दावा करूँगा कि अन्य जातियों के ग्रन्थों में नारी के लिए केवल निन्दात्मक बातें ही कही गयी हैं, उनकी प्रशंसा में कुछ भी नहीं कहा गया है।

इसके बाद हम अपने प्राचीन नाटकों पर आते हैं। अन्य ग्रन्थों में चाहे जो कुछ भी लिखा हो, नाटकों में तत्कालीन समाज की यथार्थ परिस्थिति देखने को मिलती है। ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व से लिखित इन ग्रन्थों में हम विश्वविद्यालयों को बालकों तथा बालिकाओं से भरा हुआ पाते हैं। (वर्तमान में) हिन्दू बालिकाएँ वहाँ नहीं दिखाई देतीं, क्योंकि परवर्ती काल में उन्हें उच्च शिक्षा देना बन्द हो गया। परन्तु (उन दिनों), इस देश के समान ही वे सर्वत्र दीख पड़ती थीं, वे घूमने-फिरने के लिए बाग-बगीचों में भी जाया करती थीं।

एक अन्य विषय मैं आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ, जिसमें हिन्दू नारी अन्य सभी जाति की नारियों की तुलना में उच्चतर स्थिति में है; और वे हैं उनके अधिकार। भारत में पुरुषों के समान ही नारियों को सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है और यह व्यवस्था हजारों वर्षों से चली आ रही है।

यदि आप लोगों का कोई वकील मित्र हो, तो उसकी सहायता से आप स्वयं ही हिन्दू स्मृति-शास्त्रों की टीकाओं में इसे देख सकते हैं। एक महिला अपने पति के पास लाखों डॉलर ला सकती है, परन्तु उसमें से प्रत्येक डॉलर उसका अपना होगा। किसी को भी उसमें से एक डॉलर को भी छूने का अधिकार नहीं होगा। यदि पति की निस्सन्तान ही मृत्यु हो जाय, तो उसके माता-पिता के जीवित रहने के बावजूद उसकी सारी सम्पत्ति पत्नी को ही मिलेगी। प्राचीन काल से अब तक यही नियम चला आ रहा है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें अन्य देश की नारियों की तुलना में हिन्दू नारियाँ बेहतर स्थिति में रहती आयी हैं।

प्राचीन ग्रन्थ यहाँ तक कि नवीनतर ग्रन्थ भी हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह को निषिद्ध नहीं कहते; इसे निषिद्ध मानना भूल है। शास्त्र स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों को ही इस विषय में स्वयं ही निर्णय लेने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमारे धर्म में दुर्बलों के लिए ही विवाह का विधान किया गया है और आज भी इस विधान को त्यागने का मुझे कोई कारण नहीं दिखता। जो लोग स्वयं में अपने को परिपूर्ण समझते

हैं, उन्हें विवाह करने की क्या आवश्यकता है? जो लोग विवाह करते हैं, उन्हें एक अवसर दिया गया है। वह अवसर समाप्त हो जाने पर पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों का ही दुबारा विवाह करना निकृष्ट माना जाता है, परन्तु उसको निषिद्ध नहीं माना जाता है। किसी भी ग्रन्थ में विधवा-विवाह का निषेध नहीं किया गया है। जो विधवा या विधुर अविवाहित रह सकते हैं, उन्हें अपेक्षाकृत अधिक धर्मप्राण माना जाता है।

वैसे पुरुष इस नियम को तोड़ कर विवाह कर लेते हैं; जबकि महिलाएँ उच्चतर आध्यात्मिक स्वभाव के कारण इस नियम का पालन करती हैं। उदाहरणार्थ, हमारे शास्त्र कहते हैं कि मांस खाना बुरा और पाप है, तो भी इस तरह का मांस खाया जा सकता है – जैसे भेड़ या बकरे का मांस। मैंने हजारों लोगों को मांस खाते देखा है, परन्तु किसी भी ऊँची जाति की स्त्री को किसी भी तरह का मांस खाते नहीं देखा। इससे उनकी नियमबद्धता तथा धर्मप्राणता का परिचय मिलता है। परन्तु इससे हिन्दू पुरुषों के विषय में कोई बुरी धारणा मत बना लेना। मैं भी एक हिन्दू पुरुष हूँ और मेरी परिस्थिति के अनुसार भी हिन्दू सामाजिक नियमों को देखने का प्रयास होना चाहिये।

विधवाओं द्वारा पुनर्विवाह न करना क्रमश: एक परम्परा में परिणत हो गया और भारत में जब कोई परम्परा बद्धमूल हो जाती है, तो उसे तोड़ पाना प्राय: असम्भव हो जाता है – ठीक वैसे ही जैसा कि तुम्हारे देश में तुम देखते हो कि 'पाँच दिनों तक चलने वाले फैशन' की प्रथा को तोड़ना कितना कठिन है। निम्नतर जाति की विधवाएँ पुनर्विवाह करती हैं; केवल दो जातियाँ इसकी अपवाद हैं।

परवर्ती काल के हमारे किसी स्मृति-ग्रन्थ में लिखा है कि कोई महिला वेद नहीं पढ़ सकती, परन्तु यह एक दुर्बल ब्राह्मण के लिए भी निषिद्ध है। यदि कोई ब्राह्मण बालक दृढ़चित्तवाला न हो, तो उस पर भी यही नियम लागू होता है। परन्तु इससे यह नही सिद्ध होता कि शिक्षा उनके लिए निषिद्ध है, क्योंकि वेद ही हिन्दुओं के एकमात्र ग्रन्थ नहीं हैं। महिलाएँ अन्य सब ग्रन्थों का अध्ययन कर सकती हैं। संस्कृत साहित्य का विशाल भण्डार – विज्ञान, नाटक, काव्य आदि से युक्त साहित्य-समुद्र सब उनके लिए सुलभ है। वैदिक शास्त्रों को छोड़कर वे सबकुछ पढ़ सकती हैं।

परवर्ती काल में यह विचार प्रचलित हुआ कि महिला को जब पुरोहिती करनी ही नहीं है, तो उसे वेदों का अध्ययन करने से क्या लाभ? इस मामले में, हिन्दू लोग अन्य जातियों से ज्यादा पीछे नहीं हैं। महिलाएँ जब संसार को त्याग कर हमारे (संन्यासी) संघ में प्रवेश करती हैं, तो उन्हें इसके बाद पुरुष या स्त्री नहीं माना जाता। उनके बीच लिंगभेद नहीं रह जाता। उस अवस्था में ऊँची या नीची जाति का, पुरुष या स्त्री का प्रश्न पूरी तौर से लुप्त हो जाता है।

धर्म के विषय में मुझे अपना सारा ज्ञान अपने गुरुदेव से मिला और उन्होंने यह ज्ञान एक महिला से प्राप्त किया था।

अब हम पुन: राजपूत नारियों के प्रसंग पर आते हैं। मैं तुम्हें प्राचीन ग्रन्थों में से एक कथा बताने का प्रयास करूँगा कि मुस्लिम आक्रमणों के दौरान किस प्रकार एक महिला वह कारण बनी जिसके फलस्वरूप भारत पर मुस्लिम आधिपत्य सम्भव हुआ।

एक अत्यन्त प्राचीन नगर कन्नौज के राजा की (संयोगिता नाम की) एक पुत्री थी। उसने (अजमेर तथा दिल्ली के राजा) पृथ्वीराज की वीरता तथा पराक्रम के विषय में सुन रखा था और वह उनके साथ प्रेम भी करने लगी थी।

उसके पिता (जयचन्द) ने एक राजसूय यज्ञ किया और उसमें भाग लेने को देश के सभी राजाओं को निमंत्रित किया। उस यज्ञ में सभी राजाओं को उसके लिये छोटी-मोटी सेवाएँ देनी थीं, क्योंकि वह सबसे बड़ा राजा था; और उसने घोषणा कर दी थी कि यज्ञ के अवसर पर उसकी पुत्री का स्वयंवर के द्वारा विवाह भी होगा। परन्तु उनकी पुत्री पहले से ही पृथ्वीराज से प्रेम करती थी।

पृथ्वीराज एक बड़े ही प्रतापी राजा थे और उसके पिता की अधीनता माननेवाले नहीं थे, अत: उन्होंने इस निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। कन्नौज के राजा ने पृथ्वीराज की एक सोने की मूर्ति बनवायी और उसे द्वार के पास रखवा दिया। उसने घोषणा की कि पृथ्वीराज के लिये चौकीदार का काम निर्धारित किया गया है।

इस पूरी घटना की अन्तिम परिणति यह हुई कि पृथ्वीराज एक सच्चे वीर के रूप में वहाँ आये और कन्या को उठाकर उसे अपने घोड़े पर बैठा लिया। इसके बाद दोनों भाग निकले।

जब उसके पिता को यह सूचना मिली, तो उसने अपनी सेना के साथ उन लोगों का पीछा किया और दोनों की सेनाओं के बीच एक भयानक युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों

के अधिकांश सैनिक मारे गये। और (इससे राजपूत इतने दुर्बल हो गये कि) भारत में मुसलमानों का साम्राज्य आरम्भ हो गया।

जब उत्तरी भारत में मुसलमानी सल्तनत की स्थापना हो रही थी, उन्हीं दिनों चित्तौड़ की रानी (महारानी पद्मिनी) के सौन्दर्य की प्रसिद्धि फैलने लगी। उसके सौन्दर्य की सूचना (दिल्ली के) सुलतान तक भी पहुँची। उसने एक पत्र लिखा कि रानी को उसके हरम में भेज दिया जाए। इसके फलस्वरूप चित्तौड़ के राजा और सुलतान के बीच एक बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ। आखिरकार मुसलमानों ने चित्तौड़ पर विजय पा ली। जब राजपूतों ने देखा कि वे अब अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तो सारे राजपूत पुरुषों ने तलवार उठायी और उन लोगों को मारते हुए स्वयं बलिदान हो गये। उनकी स्त्रियों ने भी अग्नि में प्रवेश करके आत्मदाह कर लिया।

सभी पुरुष योद्धाओं की मृत्यु के बाद जब विजेता (सुल्तान) ने नगर में प्रवेश किया, तो उसने देखा कि मार्ग पर चारों ओर आग की भयंकर लपटें उठ रही हैं। उसने देखा कि रानी के नेतृत्व में अनेक महिलाएँ उन (चिताओं) की प्रदक्षिणा कर रही हैं। वे लोग जब निकट पहुँचकर रानी को आग में कूदने से मना करने लगे, तो वे बोलीं, ''राजपूत नारी तुम्हारे साथ ऐसा ही व्यवहार करती है।'' ऐसा कहकर वे लपटों में कूद पड़ीं।

कहते हैं कि मुसलमानों के हाथ से अपना सम्मान बचाने के लिये उन लपटों में ७४,५०० महिलाओं ने आत्मबलिदान किया था। आज भी जब हम कोई पत्र लिखते हैं, तो उसे बन्द करने के बाद उस पर ''साढ़े चौहत्तर'' लिख देते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई इस पत्र को खोलने का साहस करता है, तो उसे ७४,५०० महिलाओं को मारने का पाप लगेगा।

मैं तुम्हें एक सुन्दर राजपूत बालिका की कहानी सुनाता हूँ। हमारे देश में एक विचित्र प्रथा है, जिसे ''रक्षा'' कहते हैं। महिलाएँ पुरुषों के पास रेशम के धागों से बनी हुई एक छोटी-सी राखी भेज सकती हैं। यदि कोई बालिका किसी व्यक्ति को यह राखी भेज दे, तो वह उसका भाई हो जाता है।

मुगल वंश का अन्तिम बादशाह एक बड़ा ही क्रूर व्यक्ति था, जिसने भारत के सबसे समृद्ध साम्राज्य को बरबाद कर डाला। अपने शासनकाल में उसने भी एक राजपूत सरदार की पुत्री की सुन्दरता के विषय में सुना। उसने आदेश भेज दिया कि उसे लाकर बादशाह के हरम में पहुँचा दिया जाये।

बादशाह का सन्देशवाहक उसका चित्र लेकर उस युवती के पास गया और उसे वह चित्र दिखाया। युवती ने घृणा के साथ उसे अपने पाँवों से रौंद दिया और बोली, ''राजपूत बालिका तुम्हारे मुगल बादशाह के साथ ऐसा ही सलूक करती है।'' इसके फलस्वरूप बादशाह की सेना ने राजपूताना की ओर कूच कर दिया।

निराश होकर सरदार की पुत्री ने एक उपाय सोच निकाला। उसने बहुत-सी राखियाँ लीं और उन्हें राजपूत राजाओं के पास इस सन्देश के साथ भेज दिया, ''आकर हमारी सहायता करो।'' सभी राजपूत वहाँ आकर एकत्र हो गये और इसके फलस्वरूप बादशाही सेना को वापस लौट जाना पड़ा। **(क्रमशः)**

कविता

सद्गुरु कृपा सुधा सरिता में

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

भूपति गुरु पहिं तुरत गयो ।
नहि कोउ तनय चौथपन आयों जब यह सोच भयो ।।
करि दण्डवत जोरि कर दोउ आपन कष्ट कह्यो ।
होइहें चारि पुत्र अस आशीष श्रीगुरुदेव दयो ।।
शृंगी रिषिहिं बुलाइ राजगुरु यज्ञ सप्रेम कर्‌यो ।
प्रगटे अगिनि दीन्हि हबि सो नृप रानिन्ह बाँटि लयो ।।
'जन राजेश' भूप दशरथ उर अति आनंद उमग्यो ।
सद्गुरु कृपा सुधा सरिता में सब दुख दूरि बह्यो ।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

०६.०४.१९६४

गत अपराह्न में असीमानन्द महाराज ने आकर ऋषि महाराज के निधन की बात बताई।

महाराज – मैं साला भोग रहा हूँ, सब कैसे कूद-कूदकर चले जा रहे हैं।

असीमानन्द महाराज – उनकी अन्तिम इच्छा थी कि उनका दाह-संस्कार बेलूड़ मठ में हो।

प्रेमेश महाराज – संन्यासी के मरने के बाद फिर उसकी देह ! मुझे तो लगता है कि मेरे जिस शरीर ने मुझे अस्सी वर्ष पीड़ा दी है, उसे यदि सब कुत्ते, सियार मिलकर परम आनन्द से खाएँ, तो मैं प्रसन्न होऊँगा ! बांगलादेश में तो ऐसा हो नहीं सकता। जो भी हो, किन्तु वह मठ का चिन्तन करते हुए गया, उसके मन में मठ का चिन्तन था।

कुछ प्रासंगिक होने के कारण मैं रमानन्द महाराज से प्राप्त प्रेमेश महाराज का सन् १९६३ ई. का एक पत्र उद्धृत कर कर रहा हूँ, क्योंकि इस पत्र में स्वामीजी के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज का उल्लेख है –

श्रीरामकृष्ण

काशीधाम

१९६३, २३ ता.

रात्रि ८.३० बजे

प्रिय विष्णुचैतन्य,

तुम्हारे पत्र में ज्ञान महाराज के प्रयाण का समाचार पाकर मैं आनन्द से उल्लसित हुआ हूँ। वृद्धावस्था में जीवित रहने से कितना कष्ट होता है, इसे मैं हर क्षण समझ रहा हूँ। उनके अन्तिम समय की बात जानने के लिये मेरी इतनी आकांक्षा है कि मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए भी मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ।

१. ज्ञान महाराज अन्तिम समय में क्या किसी की पीठ पर हाथ टेककर चलते थे, उनका चलना-फिरना कब तक हुआ था?

२. क्या वे अन्त समय तक अच्छी तरह बातचीत कर सकते थे?

३. अपने देह-त्याग की रात्रि में १० बजे जो बातें उन्होंने कही थीं, क्या वे स्वाभाविक थीं? एवं वे किस विषय से सम्बन्धित बातें थीं?

४. वे अन्त काल तक खाना-पीना कैसे करते थे? किसी पथ्य की तरह या स्वाभाविक?

५. क्या नित्य स्नान कर सकते थे?

६. मल-मूत्र विसर्जन कैसे करते थे? क्या अपने हाथों से शौचादि कृत्य कर सकते थे?

मोटे तौर पर, उनके अन्तिम समय की स्थिति के बारे में तुम विस्तृत रूप से मुझे लिखकर अवगत कराओ, इसीलिए मैं यह लिफाफा भेज रहा हूँ।

मेरी शारीरिक अवस्था अत्यन्त खराब है। तुम आने पर सब कुछ देख सकोगे। आशा करता हूँ कि शीघ्र ही आओगे। मेरा स्नेह-आशीर्वाद जानना।

इति

शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

एक दिन काशी में एक व्यक्ति ने प्रेमेश महाराज से पूछा, ''महाराज, कैसे हैं?''

महाराज – सुनो, किसी वृद्ध से 'आप कैसे हैं', मत पूछो। मैं एक बार ग्रीष्म काल में ट्रेन से काशी में आया हूँ। उन दिनों तृतीय श्रेणी के डिब्बे की क्या दशा होती थी, इसके अतिरिक्त, रेल आरक्षण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। ट्रेन बहुत देर से आई। किसी तरह एक रिक्शा करके

सेवाश्रम पहुँचा। उस समय दोपहर था - गर्मी से सब धू-धू कर रहा था। प्रवेश करते ही मैंने एक वृद्ध महाराज को देखा। कंधे पर सामान के साथ ही उन्हें प्रणाम किया। जैसे ही उनसे पूछा – कैसे हैं, वे सिर के केशों से लेकर पैरों के नखों तक सभी अंगों के रोगों का विस्तृत विवरण देने लगे। थका-हारा मैं कंधे पर सामान लिए हुए वहाँ खड़े-खड़े सब सुनने को बाध्य हुआ। इसीलिए कहता हूँ कि वृद्धों से कभी मत पूछना कैसे हैं?

०७-०४-१९६४

काशी में अम्बिकाधाम के सामने पूरब-पश्चिम पथ पर पेराम्बुलेटर पर चलते-चलते एक भद्र महिला को देखकर –

महाराज – देखते ही माँ की बात याद आती है – मेरी आँखें, इसकी अभ्यस्त हैं – देखो कैसे सुन्दर शरीर का सब अंग ढँका है। अंग्रेजों के सभी परिधान केवल भड़काऊ होते हैं, शरीर के सभी अंगों का सम्मोहन मिलता है। इसीलिए मैं गंजी की जगह फतुआ अधिक पसन्द करता हूँ। यहाँ के हिन्दू लोग भी चेकदार लुंगी पहनते हैं। सारगाछी में गाँव में केवल मुसलमान लोग लुंगी पहनते थे, किन्तु बाबू लोग रात में सोते समय लुंगी पहनते थे। पहले निष्ठावान ब्राह्मण लोग थे, उन्होंने कड़े नियमों से समाज को अनुशासनबद्ध कर रखा था, ठीक पुलिस की तरह थे। भगवान ने स्वयं कहा है – '**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं**' – चार वर्गों के नहीं रहने पर बिलकुल ही समाज की उन्नति नहीं होती।

एक नए डॉक्टर समीप से गुजर रहे थे, उनके मुख की ओर देखकर महाराज ने कहा – महा रजोगुणी। डॉक्टर, वकील, दलाल, जो लाभ कमाते हैं, (दलाली लेते हैं) वे महा रजोगुणी होते हैं। किन्तु जो कृषि का कार्य करते हैं, वे समाज सेवक हैं। उनके नहीं रहने पर सारी सभ्यता समाप्त हो जाएगी। डॉक्टर को तो दिन-रात मनुष्यों (रोगियों) का चिन्तन करना पड़ता है, वकील तो झूठ और सच से परे होता है ! अंग्रेजों की तरह उनमें खूब दिखावा होता है। दलालों के धंधों की तो कोई बात ही नहीं है। हमारे वैद्यराज (चिकित्सक) इतने रजोगुणी नहीं थे। इसके अलावा, पैसों की ओर इतना ध्यान नहीं था। समाज में श्रेणी थी – सब कोई पैसा, धन, सब्जी-तरकारी, कपड़े-लत्ते देता था, समाज उसका पोषण करता, अतएव अन्न या भोजन के लिये अन्याय-पथ का सहारा नहीं लेना पड़ता था।

०८-०४-१९६४

प्रात:काल महाराज टहल रहे हैं, एक साधु आकर उनके साथ टहलने लगे।

साधु – यदि मैं ठाकुर के घर की बिल्ली होता !

महाराज – तो क्या होगा, नहीं जानने से कुछ भी नहीं होता। यदि अपने भीतर रहने की सुर को पकड़ सको, तो फिर शास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर शास्त्रपाठ में कुछ दोष-त्रुटि रहने पर भी वह अनायास ही पकड़ में आ सकती है, नहीं तो शास्त्र-पाठ व्यर्थ है !

एक कहानी सुनो। एक व्यक्ति ने आकर स्मृतिशास्त्र के एक पंडितजी से पूजा-विधान जानना चाहा। बाद में अपने गाँव में जाकर एक दूसरे पंडितजी को वही पूजा-विधान बताया। पंडितजी ने कहा – वह पद्धति ठीक नहीं है, दूसरे प्रकार का ठीक है। तब उस व्यक्ति ने पहले वाले पंडित के पास जाकर वह सब विधान बताया। उन्होंने सुनकर कहा, "अच्छा, तब मैं किस ओर मुख करके बैठा था? इत्यादि एक-दो प्रश्न पूछा। किसी प्रकार का उपाय न देखकर उन्होंने परवर्ती पंडित की बात मान ली और घर जाकर एक-दो ग्रंथों का मंथन कर आकर कहा – मैं रघुनन्दन की स्मृति से कहा था, उन्होंने अमृतक्षरा (स्मृति ग्रंथ) के विधान के अनुसार कहा है अर्थात् पंडित के विधान के ऊपर जिससे जन-साधारण का श्रद्धा-विश्वास निर्बाध बना रहे, उसके लिए ही यह नाटकीय व्यवस्था थी।

गीतापाठ चल रहा है।

सेवक – टीका में केवल यज्ञ की बातें हैं। सामान्य ढंग से कुछ नहीं कहा गया है।

महाराज – उस समय ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य लोग शास्त्रों के निकट फटकते नहीं थे, वैसा सुअवसर भी नहीं मिलता था। इसीलिए टीका में केवल यज्ञों के अभ्युदय आदि की बातों के द्वारा व्याख्या की गई है।

देखो, ग... नवागन्तुक युवक है, मुझे देखकर दुख होता है ! कहता है – रोगी को भगवान कैसे कहें? पापियों को ही तो रोग होता है और भगवान का बोध तो ज्ञान होने पर ही होता है। मैंने कुछ कहा था। एक बार बोलने से क्या होता है ! ठाकुर ने पत्थर को मातृरूप में चिन्तन करते-करते अन्तत: पत्थर को माँ ही देखा। उसी प्रकार साधना करने पर उससे ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। पता नहीं, वह युवक समझ पाया या नहीं। **(क्रमश:)**

गुरु-पूर्णिमा विशेष

गुरु की खोज

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट, गुजरात

चीन के प्रसिद्ध तत्त्वचिन्तक लाओत्सु के एक अनुयायी एक कहानी सुनाया करते थे। एक युवक दस्युओं के दल में शामिल हुआ था, जिसके सरदार का नाम ची था। एक दिन उस युवक ने सरदार से पूछा, ''क्या चोरी-तस्करी से 'ताओ' (सच्चा पथ) मिल सकता है?'' ची ने कहा, ''मुझे एक चीज तो ऐसी दिखाइये कि जिसमें ताओ न हो, एक नियम न हो, या सच्चा पथ न हो। चोरी में 'बुद्धिमत्ता' चाहिए, जिससे धन-दौलत के बारे में जानकारी मिलती है। सर्वप्रथम प्रवेश करने का 'साहस' होना चाहिए और अन्त में बाहर निकलने की 'धीरता' चाहिए, सफलता मिलेगी या नहीं उसका अनुमान लगाने की 'दूरदर्शिता' चाहिए और अन्त में चोरी का माल अन्य दस्युओं के बीच समान रूप से बाँटने के लिये 'न्याय' चाहिए। कोई भी चोर इन पाँच गुणों के बिना सफल नहीं हो सकता।''

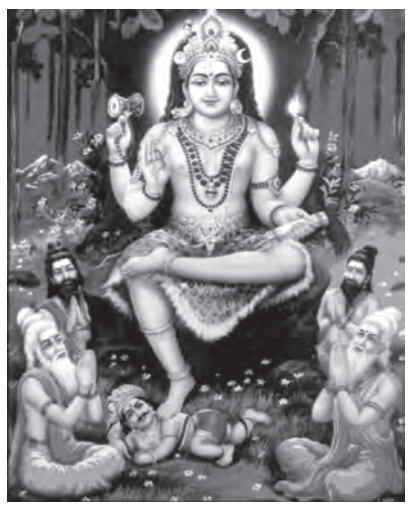

हर एक क्षेत्र में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। स्कूल-कॉलेजों में अभ्यास के लिए जाते समय या संगीत, जुडो-कराटे, अँग्रेजी आदि सीखने में लोग प्रशिक्षक की, गुरु की आवश्यकता को यूँ ही स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अध्यात्म-विद्या पाने की बात पर लोग पूछते हैं, 'क्या गुरु का होना आवश्यक है?' श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से किसी ने पूछा, 'महाराज, क्या गुरु का होना आवश्यक है?'

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने मुस्कराते हुए कहा, ''बच्चा, किसी को चोरी करना सीखना हो, तो प्रशिक्षक की आवश्यकता होती है, तब इस अति गूढ़ ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिये गुरु की आवश्यकता नहीं रहेगी क्या?'' आजकल तो पॉकेटमारों के भी गुरु होते हैं? उनको भी जेबकतरों के सरदार के नीचे कड़ी मेहनत के साथ प्रशिक्षण लेना पड़ता है।''

श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य-सुविख्यात नाटककार, कवि श्री गिरीशचन्द्र घोष अपनी वृद्धावस्था में लोगों को होमियोपैथी दवाइयाँ देते थे। एक बार जब वे दवाई दे रहे थे, तब एक युवक ने आकर कहा, 'महाशय, मेरी घड़ी रास्ते में खो गई है।'' पास ही में एक सज्जन बैठे थे, उन्होंने जिज्ञासावश पूछा, ''कब और कैसे खो गई?'' युवक ने उत्तर दिया – अमुक स्थान पर, अमुक समय खोई थी। उस सज्जन ने युवक से कहा, 'चिन्ता मत करना, तुम्हारी घड़ी तुम्हें अवश्य मिल जाएगी।'' ऐसी सान्त्वना उन्होंने कैसे दी? क्योंकि वे सज्जन जेबकतरों की टोली के 'सरदार' थे – 'गुरु' थे।

आजकल 'गुरु' शब्द बहुत ही तुच्छ हो गया है – विद्यालय के गुरु, संगीत के गुरु, मैनेजमेंट के गुरु, जेबकतरों के गुरु। इस प्रकार गुरु शब्द का प्रयोग हर जगह बेहिचक होने लगा है और उसकी गरिमा कम हो गई है। वास्तव में गुरु शब्द अत्यन्त गरिमायुक्त है। उसे सुनते ही हमारा मस्तिष्क श्रद्धा से नत हो जाता है। प्राचीनकाल से यह शब्द अध्यात्म विद्या – ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवालों के लिए ही प्रयुक्त किया जा रहा है। 'गुरु' शब्द 'गु' अर्थात् अन्धकार, 'रु' अर्थात् प्रकाश, इस प्रकार दो अक्षरों से बना है। जो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाए, मोह के अन्धकार से परम ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाए, केवल वही गुरु है :

गुकारोऽन्धकारस्तु रुकारस्तन्निवर्तकः।
अन्धकार निवर्त्या तु गुरुरित्यभिधीयते।।

उपनिषद में गुरु की आवश्यकता दर्शाते हुए कहा गया है – **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् (मुण्डकोपनिषद १/२/१२),** ''जिज्ञासु को

शास्त्रज्ञ एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास हाथ में समिधा (यज्ञ के लिए उपयोगी लकड़ी, जो सेवा का प्रतीक है) लेकर ही जाना चाहिए'', 'एवं' शब्द गुरु की अनिवार्यता का द्योतक है।

गीता में कहा है –

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। गीता ४/३४

– गुरु को प्रणत होकर, उनकी सेवा करके और प्रश्न पूछकर ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए।

आजकल प्राय: सभी विषयों पर ढेर सारी पुस्तकें उपलब्ध हैं। अधिकांश लोग ऐसा मानते हैं कि वे आध्यात्मिक ज्ञान ग्रन्थों से पा लेंगे। परन्तु हम यह भूल रहे हैं कि एक ज्योति ही दूसरी ज्योति जला सकती है। स्वामी विवेकानन्द जी यह बात समझाते हुए कहते हैं, ''हममें से लगभग प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त अद्भुत ढंग से आध्यात्मिक विषयों पर भाषण दे सकता है, परन्तु जब उसे स्वयं आचरण करना होता है, तब हम देखते हैं कि हम अत्यन्त अपूर्ण नजर आते हैं। इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक विकास को त्वरित बनाने के लिए ग्रन्थ अपूर्ण हैं। आत्मा की उन्नति करने की प्रेरणा अन्य आत्मा से मिलनी चाहिए। जिस पुरुष की आत्मा से ऐसी प्रेरणा मिलती है, उसे गुरु कहा जाता है और जिस व्यक्ति की आत्मा में प्रेरणा संचारित होती है, उसे शिष्य कहते हैं।''

परन्तु इस ज्ञान का संक्रमण शिष्यों में हो पाए, इसके लिए गुरु और शिष्य दोनों को समर्थ होना चाहिए। शास्त्र में कहा है, ''**आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलाऽनुशिष्ट:**'' – वक्ता गुरु भी कुशल (विद्वान) होना चाहिए और श्रोता शिष्य भी दक्ष होना चाहिए। गुरु के लक्षण दर्शाते हुए शास्त्रों में कहा है कि गुरु को 'श्रोत्रिय' (जिन्होंने शास्त्रों का अध्ययन कर उनका मर्म जानकर अपने जीवन में आत्मसात् किया है।), 'ब्रह्मनिष्ठ' (ब्रह्मविषयक बातों में ही लीन), 'अवृजिन,' (निष्कपट, निष्पाप), 'अकामहत: (कामनाशून्य), ऐसे अनेक गुणों से विभूषित होने चाहिए। इसी प्रकार शिष्यों के लक्षण भी दर्शाएँ हैं – शम-दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा समाधान, ऐसी षट् सम्पत्ति, नित्यानित्य वस्तु विवेक, इह लोक व परलोक के भोगों में विराग एवं मुमुक्षुत्व (मुक्ति प्राप्त करने की, आत्मज्ञान प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा)।

'ट्रांसमीटर' और 'रिसिवर सेट' दोनों उचित रूप से कार्यरत हों, तभी टीवी पर दृश्य सही ढंग से दिखता है। ठीक वैसे ही गुरु-शिष्य दोनों में योग्यता होना आवश्यक है।

किन्तु ऐसी अद्भुत योग्यता रखनेवाले गुरु का मिलना बहुत ही कठिन है। तब क्या करें? उसका उपाय है। एक रिसर्च स्कॉलर (शोधकर्ता) के लिए अत्यन्त विद्वान शिक्षक की आवश्यकता है। परन्तु सातवीं कक्षा के छात्र के लिए तो मैट्रिक उत्तीर्ण शिक्षक भी उपयुक्त हैं, वे भी उसे पढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार हमारे भीतर भी यदि आदर्श शिष्य के लक्षण पर्याप्त मात्रा में प्रकट न हुए हों, तो हम आदर्श गुरु की अपेक्षा नहीं रख सकते। किन्तु जो आध्यात्मिक पथ पर हमसे आगे निकले हुए हैं, उनकी सहायता से हम कुछ दूरी तय कर सकते हैं और क्रमश: प्रगति कर सकते हैं। परन्तु ऐसे गुरु मिलने पर बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए।

उपनिषद् में कहा है :

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: स्वयंधीरा: पण्डितं मन्यमाना:।
जंघन्यामाना: परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा: ।।
(मुण्डकोपनिषद १/२/८)

''अविद्या में बसतीं ये अतिमूढ़ आत्माएँ आत्मवंचना से स्वयं को बुद्धिमान समझती हैं और मिथ्या ज्ञान से फूले न समाकर वे यहाँ-वहाँ ठोकरें खाती हुई एक अन्धा दूसरे अन्धे का मार्ग दिखाकर ले जा रहा हो, ऐसे एक ही वर्तुल में घूमती रहती हैं।'' स्वामी विवेकानन्द जी यह श्लोक उद्धृत करते हुए कहते हैं, 'संसार ऐसे लोगों से भरा पड़ा है। हर कोई व्यक्ति गुरु बनना चाहता है। हर एक भिखारी लाख रुपये दान में देना चाहता है। ये गुरु इन-भिखारियों के समान ही हास्यास्पद एवं बेतुके हैं।''

आजकल ऐसे नकली गुरुओं की भरमार-सी लगी हुई है। धर्म के क्षेत्र में शायद सबसे अधिक धोखा है। इसका कारण लोगों को साधना किए बिना कुछ रुपयों में शीघ्र समाधि, निर्वाण, कुंडलिनी-जागरण इत्यादि पा लेने की लालसा है। नमस्कार और सिद्धि पाने की लालसा में आकर वे नकली गुरुओं के फंदे में फँस जाते हैं। इसी तरह 'गुरु' जैसा महान श्रद्धा संचारक शब्द अपनी गरिमा गवाँ रहा है।

इसी सन्दर्भ में एक मजेदार कहानी है। एक व्यक्ति को माँ काली के दर्शन करने की इच्छा थी, परन्तु इसके लिए

वह साधना करना नहीं चाहता था। खोज करने पर उसे एक गुरु मिले, जिन्होंने पाँच सौ रुपये गुरु दक्षिणा लेकर बात तय की और एक मंत्र देकर कहा कि इस मंत्र के जाप करने से तीसरे ही दिन माँ काली के दर्शन होंगे। भक्त की खुशी का ठिकाना न रहा। ठीक तीसरे दिन वह अपने कमरे में बैठकर गुरुजी के द्वारा दिया हुआ मंत्र रट रहा था, तब अचानक माँ काली ने दर्शन दिए। भक्त ने तुरन्त ही साष्टांग प्रणाम किए और माँ से पूछा – माँ, मैंने तो सुना है कि आपके दर्शन होने पर भक्त बहुत घबरा जाता है या बहुत ही भाव-विभोर हो उठता है, परन्तु मुझे तो ऐसी कोई अनुभूति नहीं हुई, ऐसा क्यों? तब एक पुरुष-शब्द सुनाई पड़ा, 'ऐसे किसी भी प्रश्न के उत्तर मुझे उस व्यक्ति ने नहीं सिखाये। मैंने यह भेष इसलिए धरा है कि उसने मुझे एक सौ रुपये नकद दिये हैं।''

बहुत-से लोग इस प्रकार धोखे में रुपये गँवाकर भड़ास निकालते हैं कि आजकल ऐसे ठग गुरुओं की संख्या बढ़ गयी हैं। परन्तु इसमें दोष किसका है? पाँच सौ रुपये में रेफ्रिजरेटर मिलेगा, ऐसा विज्ञापन पढ़कर यदि कोई ऐसा रेफ्रिजरेटर खरीदे और बाद में जब वह नहीं चले, तो इसमें दोष किसका है? परिश्रम किये बिना जो मुफ्त में समाधि अवस्था पाना चाहे या कोई सिद्धि चमत्कार चाहे, वह भी एक प्रकार से ठग ही है। वैसे तो यह दो ठगों के बीच की लड़ाई है, उनमें से जो अधिक बुद्धिमान होगा, वह जीत जाता है। इसीलिए मन्त्र-दीक्षा ग्रहण करने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि 'गुरु ने प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त की है या नहीं?' यह बात हम शायद समझ नहीं पाएँगे, क्योंकि यह स्वसंवेद्य वस्तु है और जिन्होंने यह अनुभव प्राप्त किया होगा, वे कभी इस बात का ढिंढोरा नहीं पिटवाएँगे। परन्तु हम इतना सुनिश्चित कर सकते हैं कि उनके चरित्र में अंगभूत नैतिक मूल्य समाविष्ट है कि नहीं और उनमें लेन-देन या नाम-यश इत्यादि की आकांक्षा है कि नहीं? ऐसी बातों की सच्चाई के बारे में नि:संशय होने के बाद ही पूर्ण श्रद्धा से गुरु के आदेश का पालन करना चाहिए।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि हमें गुरु की खोज करने की झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। हम सीधे ईश्वर से, अन्तर्यामी से ही ज्ञान पा लेंगे। किन्तु यह भी इतना सरल नहीं है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''जिसने अपने बन्धन काट डाले हों, ऐसी आत्मा की शरण में जाओ और वह आपको उचित समय पर कृपा करके मुक्त कर देगा। इससे भी महान बात है – ईश्वर की शरण में जाना। परन्तु यह सबसे अधिक कठिन कार्य है, सदी में एकाध व्यक्ति ऐसा पाया जाता है, जिसने वास्तव में ऐसा किया हो।''

सच्चाई यह है कि आधुनिक मन गुरु को स्वीकार करते हुए हिचकिचाता है, जिसका कारण 'अहं' है। एक मनुष्य को 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर:' जैसा सम्मान देना, उसे अनुचित-सा लगता है। किन्तु वह यह भूल जाता है कि यह श्लोक गुरु में स्थित गुरु-शक्ति के नाम पर रचा गया है, गुरु के भौतिक रूप पर नहीं। गुरु शक्ति ही गुरु में आश्रय पाकर रहती है और शिष्य पर कृपा करती है। फिर, कई लोगों को ऐसा लगता है कि मंत्र-दीक्षा ग्रहण करने से हमारी स्वतन्त्रता छीन जाएगी। परन्तु सच्चे गुरु कभी भी इस प्रकार से शिष्य की स्वतन्त्रता नहीं छीनते, बल्कि शिष्य को धीरे-धीरे आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करके उसका मन ही गुरु-सा बन जाए, ऐसी अवस्था तक ले जाते हैं। यह एक लम्बी-सी प्रक्रिया है। जब तक साधक आध्यात्मिक रूप से काफी आगे बढ़कर शुद्धचित्त नहीं हो जाता, तब तक उसका अशुद्ध मन धोखे में रखे, ऐसी सम्भावना बनी रहती है। इस विपदा से गुरु उबारते हैं, इसीलिए कबीर कहते हैं –

गुरु बिन कौन बतावे बाट। बड़ा विकट यम घाट।।
भ्रान्ति की पहाड़ी नदियाँ बीच मों, अहंकार की लाट।
काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े, लोभ चोर संघात।।
मद मत्सर का मेहा बरसत, माया पवन बहे दाट।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यूँ तरना यह घाट।।

पांतजल योग सूत्र में जिन्हें गुरुओं के गुरु ईश्वर के समान दर्शाया गया है, उनके चरणों में प्रार्थना है कि सद्गुरु की शरण प्राप्त हो, उनके चरण कमल के पास हृदय श्रद्धा-भक्ति से भर जाए। ○○○

शिष्य को गुरु की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए। उसे सदा गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए। कहावत है, 'यद्यपि मेरा गुरु कलवार घर जाय, तथापि मेरा गुरु नित्यानन्द राय।' अर्थात् मेरे गुरु यदि शराब भी पीएँ, तो भी वे पवित्र, निर्दोष हैं। – श्रीरामकृष्ण देव

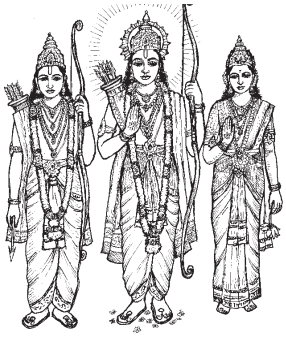

रामराज्य का स्वरूप (३/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अभी कथा में आने से पहले हमारे एक सत्संगी कानपुर से आए हुए हैं। उन्होंने कल की कथा के सन्दर्भ में मुझसे प्रश्न किया, वैसे भी कि भगवान अगर अत्यन्त कोमल हैं, इतने दयालु हैं कि –

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की।।
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरी सुंकठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
सोइ करतूति विभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी।। १/२८/५-७

वे इतने दयालु हैं कि पापों को क्षमा कर देते हैं, तो ऐसी स्थिति में मनुष्य के जीवन में, साधक के जीवन में वह अनुभूति क्यों नहीं हो रही है? क्या यह सिद्धान्त सही है? इस सन्दर्भ में मैंने वह बात जो उनके सामने कही, थोड़ा भिन्न रूप में आपके सामने दोहरा दूँ।

भगवान शंकर ने जब भगवान राम के स्वभाव का वर्णन किया, तो उसमें एक क्रम है, तीन दृष्टियों से भगवान के विषय में बात कही गई। धर्म की दृष्टि से, ज्ञान की दृष्टि से और भक्ति की दृष्टि से; तीनों तीन दृष्टि से ईश्वर के सम्बन्ध में विचार करते हैं। धर्म की परम्परा यह है कि वह ईश्वर को संविधान मान कर जीवन में धर्म का निर्णय करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर ने सृष्टि का जो निर्माण किया है, उसमें कर्म के द्वारा सृष्टि के संचालन का नियम बनाया है –

करम प्रधान बिस्व करि राखा। २/२१८/४

यही संविधान है। जैसे कोई व्यक्ति जीवन में, समाज में जब यह निर्णय करे कि हमें कैसा आचरण करना चाहिए, तो उसके सामने देश का संविधान है, भारत का संविधान है और वह संविधान के अनुकूल आचरण करेगा, तो दण्ड से बचेगा। अगर वह संविधान का उल्लंघन करेगा, तो दण्ड का पात्र बनेगा। जैसे देश का संविधान है, उसी प्रकार से धर्म का भी एक संविधान है। कर्मशास्त्र और धर्मशास्त्र के आचार्यों का यह मत है कि हमें ईश्वर की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, ईश्वर के संविधान की चिन्ता करनी चाहिए। इसे व्यवहार में भी कह लें कि राष्ट्रपति की खोज की उतनी आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रपति के पास जाकर मिले, पर देश का जो संविधान है, अगर कोई उसका ठीक-ठीक पालन कर रहा है, तो राष्ट्रपति से उसकी भेंट हो चाहे न हो, वह व्यक्ति एक श्रेष्ठ नागरिक के रूप में एक आदर्श है। उसी प्रकार से कर्मशास्त्र की मान्यता यह है कि ईश्वर से परिचय हो चाहे न हो, ईश्वर से मिलन हो चाहे न हो, पर ईश्वर ने सृष्टि में जिस संविधान का निर्माण किया है, अगर उसका पालन करता है, तो उसका कल्याण होगा –

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।। २/२१८/४

इसलिए हमारा कर्तव्य यह है कि हम कर्मशास्त्र के सिद्धान्त को समझ लें कि क्या करने से हमें क्या फल भोगना पड़ेगा। इतने मात्र से हम धार्मिक हो जाएँगे और हमारा कल्याण होगा। कर्म सिद्धान्त ईश्वर के संविधान पर बल देता है और उस संविधान का ही एक रूप स्मृतियाँ हैं। यह माना गया कि यह ईश्वरीय संविधान है, जिसका अनुभव ऋषियों, मुनियों और आचार्यों ने किया।

दूसरी ओर जो ज्ञानी हैं, उनकी मान्यता है कि संविधान मात्र से केवल व्यवहार की रक्षा होगी, पर परमार्थ की जब तक उपलब्धि नहीं होगी, तब तक व्यक्ति के जीवन में पूर्णता नहीं आयेगी। इसलिए उसकी दृष्टि से जब तक व्यक्ति, साधक, ईश्वर के स्वरूप का पता लगाने की चेष्टा नहीं करेगा, जब तक उसे ईश्वर के स्वरूप की उपलब्धि नहीं होगी, तब तक जीवन में परिपूर्णता नहीं आयेगी। केवल

व्यवहार से जीवन में परिपूर्णता नहीं आयेगी। यह ज्ञान का सिद्धान्त है –

राम स्वरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।

जो भक्त हैं, वे यह कहते हैं कि स्वरूप जानना तो अत्यन्त कठिन है और ईश्वर संविधान का पालन करना इतना सरल नहीं है। इसलिए सबसे बढ़िया यही है कि किसी प्रकार से भगवान के स्वभाव का पता लगाया जाय कि इनका स्वभाव कैसा है। तो ज्ञानी भगवान के स्वरूप पर जोर देते हैं, कर्म सिद्धान्त माननेवाले भगवान के संविधान पर बल देते हैं और भक्त लोग भगवान के स्वभाव पर अधिक बल देते हैं। वे बार-बार कहते हैं, भगवान बड़े उदार हैं। कर्मशास्त्र का संविधान कहता है, कर्म के परिणाम से छुटकारा नहीं मिल सकता, जैसा करोगे, वैसा फल पाओगे। उसे भोगना ही पड़ेगा। पर स्वभाव को माननेवाला व्यक्ति कहता है कि नहीं भाई, कर्म का परिणाम तो भोगना पड़ता है, लेकिन जैसे देश में राष्ट्रपति चाहे, तो किसी की सजा को कम कर सकता है, किसी को सजा से मुक्त कर सकता है, इसी प्रकार से ईश्वर को भी यह स्वतन्त्रता है कि वह कर्मफल से व्यक्ति को मुक्ति दे या कर्मफल को भोगने की उतनी बाध्यता न रहे। इसलिए भक्त यह कहा करते हैं कि भगवान के स्वभाव का पता लगाओ।

लेकिन हर वस्तु में दुरुपयोग की सम्भावना है। संविधान, स्वरूप के साथ-साथ स्वभाव का वर्णन जब पढ़े कि भगवान कितने कोमल हैं, कितने उदार हैं, कितने क्षमाशील हैं, तो उसमें जितनी मिठास अनुभव होता है, संविधान और स्वरूप में तो उतनी मिठास है नहीं। लेकिन जब कोई मीठी वस्तु खाए, तो उसके कुपथ्य और दुरुपयोग की सम्भावना तो बन ही जाती है, जैसाकि भक्तों का जो स्वभाव है। गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में आदि से अन्त तक भगवान के स्वभाव को दर्शाया है –

सरल स्वभाव सील रघुपति को सो बल मनहि देखावउँ।

न तो मैं यह आशा कर पाता हूँ कि मैं भगवान के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकूँगा और न तो हम यह मानकर चलते हैं कि हम उसके संविधान का पालन कर सकेंगे, लेकिन हमारे भगवान का जो सरल स्वभाव है, उसी के आश्रय से हमारे जीवन में आश्वासन प्राप्त होता है। लेकिन वही समस्या है कि कोमलता के सिद्धान्त का हम कैसा उपयोग करते हैं। भगवान शंकर ने पार्वतीजी के सामने स्वभाव का वर्णन किया। एक बड़ी अनोखी बात है। रामायण में स्वभाव का वर्णन तो बहुत किया गया, पर एक बात बड़ी अनोखी कही गई। क्या? भगवान के स्वरूप को जाननेवाले भी बहुत हैं, भगवान के संविधान को जाननेवाले तो बहुत बड़ी संख्या में मिल जाएँगे, पर भगवान के स्वभाव को जाननेवाले बहुत विरले हैं। बड़ी विचित्र बात कही गई। भगवान राम भी जब अपने स्वभाव की बात कहते हैं, तब बहुत गिने-चुने नाम गिनाते हैं। भगवान कहते हैं –

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।। ५/४७/१

विभीषण, मैं तुम्हें अपने स्वभाव का वर्णन सुना रहा हूँ, जिसे शंकर जानते हैं, कागभुशुण्डि जानते हैं और पार्वती जानती हैं। जब पंक्ति-पंक्ति में भगवान राम के स्वभाव का इतना मीठा वर्णन किया गया है, तो इतने पात्रों में केवल तीन ही नाम रह गये स्वभाव को जाननेवाले? छूट तो दी गई स्वभाव को जानने का, पर फल जो बता दिया गया स्वभाव जानने का कि उसको अगर व्यक्ति समझ ले, तो व्यक्ति समझ लेगा कि भगवान का स्वभाव दुरुपयोग के लिये नहीं है। इतना तो हो सकता है कि व्यक्ति के मन में स्वभाव के फलस्वरूप नैराश्य का उदय न हो। इसे कृपया आप एकाग्र होकर समझेंगे कि जैसे रोगी के मन में, अगर वह रोगी निराश हो रहा हो कि मैं मृत्यु की दिशा में बढ़ रहा हूँ और उसको ऐसी दवा के विषय में पता चले, जिसके सेवन से उसका रोग नष्ट हो जायेगा, तो वह दवा की महिमा सुनकर उसके मन में आशा जगे यह आवश्यक है। पर रोगी ऐसी दवा का पता पाकर मनमाने कुपथ्य की स्वतंत्रता पा ले कि यह तो बहुत बढ़िया हुआ। जब ऐसी बढ़िया दवा मिल गई, तो मनमानी कुपथ्य करो, रोग हो जाय, तो दवा तो मिल ही गई है, दवा का भी सेवन करो। तो मानो इन दोनों में यह जो विभाजन रेखा है, इसका अभिप्राय है कि आप स्वभाव को जानकर आश्वासन पाना चाहते हैं, स्वभाव को जानकर आप मानमाने आचरण करना चाहते हैं? तो भगवान शंकर ने पार्वतीजी को जब भगवान राम के स्वभाव के बारे में बताया, तो पार्वतीजी ने कहा कि महाराज, यह घोषित करना तो बड़ा भयानक सिद्ध होगा। लोग भगवान की कृपालता के नाम पर मनमाना आचरण करने लगेंगे। शंकरजी ने कहा कि एक कसौटी है। क्या? उन्होंने यह

कहा कि जिस व्यक्ति ने भगवान के स्वभाव को समझ लिया है, उसकी एक ही कसौटी है और वह कसौटी बड़ी कठिन है, सचमुच बड़ी कठिन है। विरले ही व्यक्ति इसे जानते हैं। ऐसा लगने लगा कि स्वरूप और संविधान की तुलना में तो अत्यधिक कठिन है स्वभाव। वह पंक्ति क्या है? सुन्दरकाण्ड में भगवान शंकर पार्वतीजी से कहते हैं –

उमा राम सुभाव जेहिं जाना।

ताहि भजनु तजि भाव न आना।। ५/३३/३

एक ही कसौटी है। जिसने भगवान के स्वभाव को जान लिया, उससे कभी पाप होगा ही नहीं। बड़ी अद्‌भुत बात हो गई। वह व्यक्ति तो बस केवल भगवान के प्रेम में डूबा रहेगा। उसके अन्तर्मन में स्वभाव को जान लेने के बाद भी अगर मनमाने आचरण की प्रेरणा उत्पन्न होती है, तो उसने सच्चे अर्थों में भगवान के स्वभाव को जाना नहीं है, स्वभाव को समझा नहीं है। व्यक्ति अपने को धोखा देने की कला में बड़ा निपुण है। वह जब कोई कार्य करता है, तो बहुधा गीता या रामायाण की पंक्तियाँ या श्लोक दुहरा दिया करता है कि ईश्वर हृदय में बैठा हुआ है, जैसा वह करा रहा है, वैसा मैं कर रहा हूँ। या जो कुछ ईश्वर चाहता है, वही व्यक्ति करता है। ऐसी स्थिति में ईश्वर को मार्गदर्शक बनाना या ईश्वर को प्रेरक मानना, एक बड़ा ही खतरनाक सिद्धान्त है – ईश्वर की प्रेरणा। वह सचमुच ही ईश्वर की प्रेरणा है या वास्तव में वासना की प्रेरणा है। इस विषय में रामायण में, गीता में बड़ा विचार किया गया है। एक ओर गीता में यह कहा गया कि

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

दूसरी ओर अर्जुन ने जब भगवान से पूछ दिया –

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः। गीता ३/३६

व्यक्ति यह जो पाप करता है, वह किसकी प्रेरणा से करता है? एक ओर तो भगवान यह कहते हैं कि ईश्वर ही प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में बैठा हुआ है और वह प्रेरित कर रहा है। पर अर्जुन ने जब पूछ दिया कि मनुष्य पाप की दिशा में क्यों प्रेरित होता है, तो भगवान ने यह नहीं कह दिया कि वह मेरी प्रेरणा से होता है। तब उन्होंने कहा –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।गीता ३/३७

काम की वृत्ति, क्रोध की वृत्ति, अभिमान की वृत्ति, व्यक्ति को पाप की दिशा में ले जाती है। इसलिए इन दोनों में सामंजस्य की दृष्टि से मानो सांकेतिक अर्थ यह है कि अयोध्यावासियों में अनेक सद्‌गुण होते हुए भी उनका त्याग शुद्ध क्षणिक आवेश, क्षणिक भावना से प्रेरित था। उसके साथ-साथ उन्होंने ईश्वर का अनुगमन किया, पर वे मार्ग में ही रह गये। ईश्वर जीवन से खो गया। खो जाने के बाद फिर वही सांकेतिक भाषा आती है, वह बड़े महत्त्व की है। क्या? भगवान सुमन्त जी से कहते हैं कि रथ को ऐसा चलाइए कि इनको पता न चले कि रथ किस दिशा में गया है। ये न जान पाएँ कि किस मार्ग से मैं गया हूँ। इसका सांकेतिक अभिप्राय यह है कि धर्मरथ पर भगवान राम आरूढ़ हैं और भगवान राम इसके द्वारा यह बताना चाहते हैं कि धर्म का पथ सुनने में ऐसा लगता है कि धर्म और अधर्म का निर्णय बड़ी सरलता से किया जा सकता है, पर वास्तव में धर्म का पथ इतना क्लिष्ट है, इतना अटपटा है, इतना घुमावदार है कि व्यक्ति उसको ढूँढ़ पाने में सक्षम नहीं हो पाता है। अयोध्यावासी भावनात्मक त्याग की स्थिति में हैं और भगवान राम रात्रि में रथ पर बैठकर प्रस्थान करते हैं और उस रथ के लीक को ढूँढ़ पाना अयोध्यावासियों के लिए सम्भव नहीं हो पाता। उसका परिणाम होता है कि अयोध्या के नागरिकों को लौटना पड़ता है। जो स्थिति अयोध्यावासियों की है, कभी-कभी साधक के जीवन में भी धर्म के सन्दर्भ में भावना का क्षणिक आवेश होता है, उस समय वे धर्म का सही-सही निर्णय नहीं कर पाते। ऐसा लगता है कि ईश्वर के पीछे चलते हुए भी वे ईश्वर का अनुगमन करने में सक्षम नहीं हुए। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य कैसे निर्णय करे कि हमें क्या निर्णय करना चाहिए? इसी लकीर को ढूढ़ना है। गोस्वामीजी कहते हैं कि मनु सामने नहीं है कि व्यक्ति मनु का अनुगमन करे, पर मनु ने मानो स्मृति के रूप में एक लीक छोड़ दिया है। जब कभी व्यक्ति के मस्तिष्क में यह भ्रम हो कि क्या धर्म है और क्या अर्धम है, तो उसका कर्तव्य है कि वह मनुस्मृति का अनुगमन करे।

अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका। १/१४१/२

(क्रमशः)

कायरो ! शीघ्र ही वापस लौट जाओ

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सर्दियों के दिन थे। सूर्योदय का समय हो रहा था। जंगल प्रभात के ओस-कणों से निखर रहा था। अचानक किसी बच्चे के रोने की आवाज सुनकर मोमइ तामुली बरबरुआ अचंभित हो गया। उसे यह जानने की बड़ी उत्सुकता हुई कि इतने ठण्डे मौसम में छोटे बच्चे को कौन लेकर आया है? जिस दिशा से आवाज आ रही थी वह उस ओर बढ़ा और वहाँ देखा कि छह माह का एक छोटा-सा बच्चा एक पेड़ के नीचे रक्त से सना हुआ पड़ा है। उसने गर्म कपड़ों में लिपटे उस बच्चे को उठा लिया। वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि रक्त से लथपथ बच्चा अभी भी जीवित है। मोमइ तामुली ने उस बच्चे को ईश्वर का वरदान मानकर गोद ले लिया और उसका नाम लचित रखा। आसामी में 'ल' का अर्थ होता है रक्त और 'चित' का अर्थ होता है सना हुआ। यह बच्चा था असम का वीर सेनापति (बड़फुकन) लचित ।

असम के राजा जयध्वज सिंह ने बीमारी के कारण प्राण त्याग दिए। उसके बाद चक्रध्वज सिंह अहोम (असम) का राजा बना। औरंगजेब ने पूरे भारत में अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए उत्तर-पूर्वी भारत में तत्कालीन अहोम राज्य पर आक्रमण के लिए राजपूत राजा राम सिंह को विशाल सेना के साथ भेजा। अहोम के राजा को एक कुशल नेतृत्व देशभक्त, ईमानदार, वफादार, चतुर तथा वीर सेनापति की खोज थी। उसके लिए उन्होंने लचित को अहोम साम्राज्य के सेनापति के रूप में चुनने का निर्णय लिया। लचित को दरबार में बुलाया गया। जैसे ही दरबार में घुटने के बल राजा के पास बैठा एक रक्षक उसका शिरस्त्राण निकालकर भागा, लचित ने उसका पीछा किया और कहा, मेरा शिरस्त्राण इसने निकाला है, कोई भी योद्धा अपने आत्म-सम्मान को पहुँची ठेस बर्दाश्त नहीं कर सकता। यह उसके आत्मसम्मान का प्रश्न है। वे रक्षक का सिर उड़ा देना चाहते थे। परन्तु राजा ने उन्हें रोककर कहा कि यह सब उनके आदेश पर हुआ है क्योंकि उन्हें ऐसे ही योद्धा की खोज थीं जो अपने सम्मान को अपने जीवन से बढ़कर मानता हो। इस प्रकार लचित परीक्षा में पास हुए और उन्हें अहोम का प्रमुख सेनापति (बड़फुकन) बनाया गया।

लचित सन् १६७१ की सरायघाट की लड़ाई में अपनी नेतृत्व क्षमता के लिए प्रसिद्ध हुए थे। मुगल सेना ने गोहाटी पर भयंकर आक्रमण किया, जिससे अहोम के सैनिकों में कोलाहल मच गया। वे लोग नदी में कूदने लगे। लचित ने अपनी नौका में उपद्रव मचाने वालों को नदी में ढकेल दिया। अब अकेले ही लचित की युद्ध-नौका मुगल की विशाल सेना की अस्त्र-शस्त्र से भरी युद्धनौकाओं की ओर बहने लगी। लचित बड़फुकन को बहुत तेज बुखार था। युद्ध में उनकी सेना हारने लगी थी, इसकी सूचना मिलते ही लचित बीमार होते हुए भी युद्ध में शामिल हुए और चिल्लाकर कहा, ''कायरो ! शीघ्र ही वापस लौट जाओ और अपने परिवार के साथ सुखी रहो। अपने राजा से (स्वर्गदेव) यह अवश्य कहना कि जब तक लचित जीवित है, तब तक मुझसे गोहाटी कोई नहीं छीन सकता।'' उनकी यह बात सुनकर अहोम के सैनिकों का मनोबल बढ़ा। उनके इस मनोबल को देखकर दुश्मन के सैनिकों में भगदड़ मच गई थी।

सीमित संसाधन होने पर भी अहोम की सेना ने अपनी चतुराई, तकनीक और मनोबल के दम पर शक्तिशाली मुगल सेना को परास्त कर दिया। लचित की नेतृत्व क्षमता के बल पर सरायघाट की इस लड़ाई में ४००० मुगल सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया। इसके बाद किसी ने भी कभी उत्तर-पूर्वी भारत पर आक्रमण नहीं किया। इस युद्ध में मुगल सेना की भारी पराजय हुई।

लगभग सन् १६७२ में बीमारी के कारण वीर सेनापति लचित की मृत्यु हुई। वीर लचित अपनी बहादुरी, ईमानदारी, निष्ठा और देशभक्ति के लिए असम के इतिहास में मराठा वीर शिवाजी के समान सदा अमर हैं। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (१)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की हैं। – सं.)

श्रीरामकृष्ण-गीता के सम्बन्ध में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परमाध्यक्ष स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज के आशीर्वचन

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की उपदेशावली विभिन्न भाषाओं में अनुदित होकर प्रकाशित हो चुकी है। उनकी उपदेशावली की विशेषता यह है कि उसमें दृष्टान्त, उपमा, वर्णन और छोटी-छोटी सरस तथा चित्ताकर्षक कहानियों के माध्यम से उन घटनाओं को पुन: स्थापित किया गया है, जो प्रत्यक्षदर्शी कुछ श्रोताओं के द्वारा संकलित हुई है। इनमें दो प्रधान ग्रन्थ हैं – (१) मास्टर महाशय श्री महेन्द्रनाथ गुप्त या 'श्रीम' द्वारा बंगला में संकलित 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत', हिन्दी में 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' एवं अंग्रेजी में 'Gospel of Sri Ramakrishna' नाम से प्रसिद्ध है तथा (२) श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य और पार्षद श्रीमत् स्वामी सारदानन्द जी द्वारा संकलित 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग'। इस ग्रन्थ में भगवान श्रीरामकृष्ण देव के दिव्य जीवन तथा आविर्भाव का अति सुन्दर चित्रण है। ये दोनों ही ग्रन्थ विश्व के विभिन्न भाषाओं में अनूदित होकर ज्ञानी तथा गुणी पाठकों द्वारा समादृत हुए हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों द्वारा श्रीरामकृष्ण देव की अमृतमयी वाणी का संकलन किया गया है। जिसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है उनके मानसपुत्र और पार्षद श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज द्वारा संकलित 'श्रीरामकृष्ण उपदेश'। यह पुस्तिका सर्वप्रथम कोलकाता के उद्‌बोधन कार्यालय से सन् १९०९ में प्रकाशित हुई थी। इसकी विशेषता यह है कि (१) इसमें श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों को क्रमश: और सहज, सरल व मनमोहक रूप से सुसज्जित कर प्रस्तुत किया गया है, जो त्यागी, गृहस्थ और अध्यात्म-पिपासुओं के आध्यात्मिक जीवन-गठन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। (२) उपदेशों को विषयानुसार विभक्त कर पुन: स्थापित करने के कारण यह आकर्षक हो गया है तथा (३) आकार में छोटी होने से इस पुस्तिका को सदैव अपने साथ रखा जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ने श्रीमद्भगवद् गीता और उपनिषदों की तुलना करते हुए कहा है – ''उपनिषद मानो एक महा अरण्य है, जहाँ ब्रह्मविद्या के उपदेश अनेकानेक पुष्प की तरह बिखरे हुए हैं, उन्हें खोज-खोजकर एक पुष्पगुच्छ की तरह सुसज्जित करना है, परन्तु श्रीमद्भगवद् गीता में उपनिषदों के समस्त तत्त्व को पत्र-पुष्प तथा विभिन्न वर्ण और सुगन्धित पुष्पराशि के रूप में एकत्र कर नयनाभिराम, मनोमुग्धकारी पुष्पगुच्छ में सुसज्जित कर दिया गया हैं''। 'श्रीरामकृष्ण उपदेश' पुस्तिका के लिए भी यही उक्ति चरितार्थ होती है।

इस 'श्रीरामकृष्ण उपदेश' पुस्तिका में संकलित उपदेशों को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के संन्यासी स्वामी पूर्णानन्द ने संस्कृत में अक्षरश: अनुवाद कर एवं श्रीमद्भगवद्‌गीता की तरह छंदोबद्ध किया है।

श्रीभगवान के वचनामृत का अनर्थ न हो, इस ओर भी विशेष ध्यान रखा गया है। 'श्रीरामकृष्ण उपदेश' पुस्तिका के अनुसार ही एक-एक कर २५ अध्याय में जैसे श्रीमहाराज जी ने उपदेशों का संकलन किया है, ठीक उसी क्रम से संस्कृत छन्दों में, यह उपदेश कुल ८५० श्लोक और उसके साथ मंगलाचरण व ग्रन्थ प्रशंसा आदि मिलाकर कुल ८८१ श्लोकों से पूर्णानन्द ने इस कठिन कार्य को सम्पन्न किया है।

श्लोकों का गद्यरूप एवं अन्वय, शब्दार्थ के साथ 'श्रीरामकृष्ण उपदेश' पुस्तिका का ज्यों-का-त्यों अनुसरण किया गया है। इस ग्रन्थ का नाम दिया गया है 'श्रीरामकृष्ण-गीता'।

यह 'श्रीरामकृष्ण-गीता' भक्त, ज्ञानी, सुधीजनों द्वारा सादर ग्रहण व समादृत होने से स्वामी पूर्णानन्द का श्रम सार्थक होगा। आशा करता हूँ यह ''श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ समस्त पाठकों की आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करेगा। ॐ तत् सत्।

श्रीरामकृष्ण-गीता के सम्बन्ध में लेखक की भूमिका

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के श्रीमुख से नि:सृत सरस निर्झरिणी है यह 'श्रीरामकृष्ण-गीता'। यह अपने सान्निध्य में आये सुहृद भक्तों और गुणियों को पोषित-पल्लवित करती है तथा उनके मानसिक विकारों को दूर कर उन्हें आध्यात्मिकता से सराबोर कर देती है। श्रीरामकृष्ण देव द्वारा प्रदत्त अमृतोपम उपदेश को उनके भक्तों व पार्षदों ने अपनी-अपनी क्षमता अनुसार लिखित रूप प्रदान करने की चेष्टा की। कई भक्तों ने उनकी गहन, गम्भीर, सुधामयी वाणी को संक्षिप्त आकार में मुद्रित करने का प्रयास किया, किन्तु वह फलप्रसू नहीं हुआ। श्रीयुत महेन्द्रनाथ गुप्त (जिन्हें हम 'मास्टर महाशय' अथवा 'श्रीम' के नाम से जानते हैं) को जब से श्रीरामकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त हुआ, तब से उन्होंने उनके सुधारस से पूर्ण वचनों को सहज, सरल और गम्भीरता से लिखना प्रारम्भ किया, वही कालान्तर में 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही भगवान (श्रीरामकृष्ण) और भक्त (मास्टर महाशय) विश्व प्रसिद्ध हो गए। 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' का विभिन्न भाषाओं में संक्षिप्त व समग्र प्रकाशन हो चुका है। यह ग्रन्थ अद्वितीय, अतुलनीय और पूजित है।

श्रीरामकृष्ण देव के साक्षात् दैवीय पार्षद व मानस पुत्र परम पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज जी ने 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' के प्रकाशनोपरान्त उनके उपदेशों को 'श्रीरामकृष्ण उपदेश' के नाम से लिपिबद्ध कर कोलकाता के उद्बोधन कार्यालय से उसका प्रकाशन कराया। उन्होंने समस्त उपदेशों को उसके विषय-वस्तु के अनुरूप विभिन्न अध्यायों में विभक्त कर उसका नामकरण भी किया। श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों से परिपूर्ण यह पुस्तिका उनके समस्त उपदेश समूहों का सार है। 'श्रीम' द्वारा संकलित 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' अनुपम है। यह केवल उनका उपदेश ही नहीं, अपितु श्रीरामकृष्ण देव जिस स्थिति, परिवेश तथा काल में उनके अमृतोपम प्रवचन किया करते थे, इन सबका एक चित्रात्मक वाङ्मय रूप है। यह श्रीरामकृष्ण देव के वचनामृत का एक अनमोल-दस्तावेज है, जिसका पाठ करने पर यह अनुभूति होती है कि स्वयं श्रीरामकृष्ण देव के मुख से उनके वचनों का श्रवण कर रहे हैं। मानस-पटल पर समकालीन परिस्थिति का रेखाचित्र उभर आता है। इतना ही नहीं, स्वयं को उनकी भक्त मंडली में उपस्थित पाते हैं। श्रीमाँ सारदादेवी ने इस प्रसंग में कहा था – ''मुझे तुम्हारे मुँह से 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' सुनकर ऐसा बोध हुआ जैसे साक्षात् ठाकुर जी बोल रहे हैं।'' (श्री माँ का पत्र : जयरामवाटी, २१ आषाढ़, १३०४) श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी ने भी इस ग्रन्थ की उन्मुक्त हृदय से प्रशंसा की थी। स्वामीजी ने मास्टर महाशय को लिखा था – Socratic dialogues are Plato all over. You are hidden, moreover, the dramatic part is infinitely beautiful. Everybody likes it, here or in the West." [the P.S. portion of Swamiji's letter to 'M' dated Dehradun 24 Nov. 1897] – सुकरात के संवाद में सर्वत्र ही प्लेटो है, किन्तु आपने यहाँ अपने को परे रखकर जो सजीव, नाटकीय रूपान्तरण किया है, वह वर्णनातीत है। यहाँ एवं पाश्चात्य देशों में सभी ने इसे पसंद किया है।

मास्टर महाशय द्वारा संकलित 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' की शैली उपनिषद की तरह सरस, प्रवाहयुक्त तथा जीवन्त है। उनके प्रत्येक उपदेश एक रमणीय अरण्य में दृष्टिगोचर होनेवाले सुंदर और सुगन्धयुक्त पुष्पगुच्छ की तरह हैं, जबकि परम पूज्यपाद श्रीमहाराज जी द्वारा संकलित ठाकुरजी के उपदेश नन्दन-कानन से श्रेष्ठ व चित्ताकर्षक पुष्पों को चुनकर, एक मनोरम पुष्पमाला में गुम्फित कर श्रीमद्भगवद्-गीता के समान संरक्षित हैं।

अपौरुषेय उपनिषद में उल्लेखित उपदेशों को भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में अपने श्रीमुख से उद्भाषित किया है। उपनिषद मानो अरण्य में घूम-घूमकर सुन्दर पुष्पों का चयन करना है, जबकि 'गीता' नयनाभिराम चित्ताकर्षक पुष्पों को 'पुष्पमाला' अथवा 'पुष्पगुच्छ' के रूप में संग्रहित करना है। उसी प्रकार श्रीमहाराज जी ने श्रीरामकृष्ण के सदुपदेशों का चयन कर एक अतिसुन्दर, अद्भुत माला हमें उपहार में दिया

है। विषयानुसार अध्यायों के विभाजन व यथोचित नामकरण से पुस्तक का माधुर्य व वैशिष्ट्य बढ़ गया है। संक्षिप्ताकार होने के कारण इस पुस्तिका को सदैव अपने पास रखा जा सकता है। जब भी मन व्यथित अथवा अशान्त हो, इस पुस्तिका का मात्र एक पृष्ठ पढ़ लेने से अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है तथा मन की पीड़ा का शमन हो जाता है। श्रीमहाराज जी ने संसार-सिन्धु से मथकर उपदेशामृत हमारे लिए प्रदान किया है। इस अलौकिक अमृत का पान करने से त्रिविध ताप (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) शान्त हो जाते हैं तथा जन्म-जन्मान्तर के विकार दूर हो जाते हैं।

इस अमूल्य पुस्तिका का पाठ कर मेरे मन में इच्छा हुई कि क्या इसे श्रीमद्भगवद्-गीता की तरह श्लोकाकार लिखा जा सकता है? तत्काल अनुभव हुआ कि एक साधारण मनुष्य के लिए यह महान कार्य दिवास्वप्न से अधिक कुछ भी नहीं हैं। यह तो वामन होकर चाँद को छूने तथा पंगु द्वारा पर्वत लाँघने की तरह असाध्य है। यह भी सत्य है कि कल्पनातीत को यथार्थ के धरातल पर उतारने तथा असाध्य को साधने का कार्य मनुष्य ही करता है। यदि ईश्वर की कृपा हुई, तो कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। मन को दृढ़ कर अकल्पनीय कार्य को साकार करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। उत्तरप्रदेश (वर्तमान उत्तराखण्ड) पिथौरागढ़ जिला के अन्तर्गत लोहाघाट तहसील के मायावती नामक स्थान में रामकृष्ण मठ की शाखा अद्वैत आश्रम में बंगला वर्ष १३८९ वैशाख महीने के प्रथम दिन, बृहस्पतिवार (१५ अप्रैल, १९८२) को असाध्य को साधने का श्रीगणेश हुआ।

मायावती आश्रम में रहते हुए मात्र १२ अध्याय का अनुवाद सम्भव हुआ। बहुत दिनों तक विभिन्न केन्द्रों में विभिन्न उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के कारण लम्बे समय तक यह कार्य रुका रहा। राँची, मोराबादी आश्रम में पुन: यह कार्य प्रारम्भ हुआ। सौभाग्य से वहाँ परमपूज्य श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को इसका कुछ अंश पढ़कर सुनाने का सुयोग प्राप्त हुआ। 'श्रीरामकृष्ण-गीता' के उस अंश को सुनकर वे अत्यन्त आनन्दित हुए और मेरा उत्साहवर्धन करते हुए उन्होंने कहा – ''जल्दबाजी में समाप्त कर इसका माधुर्य नष्ट न करना। धीरज के साथ कार्य करते रहो। श्रीश्रीठाकुरजी की जब इच्छा होगी, तब समाप्त होगा। 'श्रीरामकृष्ण-गीता' नाम का अनुमोदन भी उन्होंने ही किया। क्रमश: पूज्य स्वामी वेदान्तानन्द जी महाराज, पूज्य स्वामी धीरेशानन्द जी महाराज तथा संघ के प्रमुख विद्वान साधुओं को सुनाया गया। सबसे भरपूर प्रेम और प्रशंसा मिला तथा सबने उत्साहवर्धन भी किया। उसके बाद एक समय कोलकाता के योगोद्यान मठ में पूज्य स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज को तथा मायावती में संघाध्यक्ष बनकर आये पूज्य स्वामी गहनानन्द जी महाराज को भी सुनाया गया। लम्बे अन्तराल तक बाधित रहने के पश्चात् राँची सेनेटोरियम निवास के दौरान 'श्रीरामकृष्ण-गीता' का अन्वय तथा शब्दार्थ लिखना प्रारम्भ हुआ। मेघालय के शिलांग आश्रम तथा छत्तीसगढ़ के नारायणपुर आश्रम में इस कार्य में प्रगति हुई। अन्त में बेलुड़ मठ में इस कार्य की पूर्णाहुति हुई। बेलुड़ मठ में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के अन्यतम आचार्य स्वामी स्वप्रभानन्द जी महाराज को इसकी पाण्डुलिपि पढ़कर सुनाई गयी। स्वप्रभानन्द जी महाराज संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान तथा स्वयंभूप्रतिभासम्पन्न संन्यासी हैं। उन्होंने इसकी त्रुटियों का संशोधन किया।

शास्त्र में है 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' – अच्छे कार्य में पर्वत-तुल्यबाधाओं का सम्मुखीन होना एक चिरन्तन सत्य है। अनेकानेक बाधा-विघ्न के बाद अन्त में 'श्रीरामकृष्ण-गीता' हिन्दी भाषान्तर के पश्चात् रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर से प्रकाशित 'विवेक ज्योति' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित होने जा रही है। यथासम्भव प्रयास के बाद भी त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है। गुणी, ज्ञानी, विद्वान और पंडितों से प्रार्थना है कि वे अनुवाद की त्रुटि को न देखकर अपना आशीर्वाद देने की कृपा करें। आप लोगों द्वारा समादृत होने पर ही अनुवादक कृतार्थ होगा तथा धन्यता का अनुभव करेगा। ॐ तत् सत्। श्रीरामकृष्णार्पणमस्तु।

श्रीरामकृष्ण-गीता

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय ।

ॐ सामाख्याद्यैर्गीतिसुमधुरैर्मेघगम्भीरघोषै-
र्यज्ञध्वानध्वनितगगनैर्ब्राह्मणैर्ज्ञातवेदैः।
वेदान्ताख्यैः सुविहितमखोद्भिन्नमोहान्धकारैः
स्तुतो गीतो य इह सततं तं भजे रामकृष्णम्।।[१]

अनुवाद : साम आदि नाम से प्रसिद्ध वेद के सुमधुर गीत के द्वारा गुरु-गम्भीर निर्घोष से यज्ञस्थल से

उठकर आकाश को प्रतिध्वनित करनेवाली मन्त्रध्वनि के सहारे वेदज्ञ एवं शुद्धचित्त होने के फलस्वरूप शास्त्रविहित यज्ञादि के यथाविधि सम्पादन द्वारा मोहरूप अन्धकार को समग्र रूप से विच्छिन्न करने में समर्थ हुए हैं एवं वेदान्त के तात्पर्य से अवगत हुए हैं, ऐसे ब्राह्मणगण जगत में सदैव जिनकी स्तुति का गायन किया करते हैं, मैं उन भगवान श्रीरामकृष्ण का भजन करता हूँ।।

ॐ
अथ मंगलाचरणम्

ॐ दृष्टादृष्टमिदं यतश्च सकलावृत्तिर्निवृत्तिर्नृणां
यत्सत्त्वादमृषैव भाति निखिलं कृत्स्नं च येनाततम् ।
वाक्यं श्रीमुखनिःसृतं सुललितं वेदान्तवाक्यं हि यत्
सत्यं वेदमयं च जीवनमिदं गीतं विरिंच्यादिभिः ।।१।।

अन्वय : इदम् (इस) दृष्ट-अदृष्ट (दृश्यमान जगत और अदृश्यमान स्वर्गादि (लोकसमूह) (एवं) 'सर्व-जन्तुनाम् (सकल जीवगण के)' सकला वृत्तिः (प्रवृत्ति समूह) नृणाम् (मनुष्य के) निवृत्तिः (भोगाकांक्षा निवृत्ति) यतः (जिनसे) यत्– सत्त्वात् (जिनके अस्तित्व के कारण) निखिलम् (समग्र दृश्य जगत) अमृषा-एव (सत्य ही) भाति (प्रतीत हो रहा है) यस्य (जिनके) श्री-मुख-निःसृतम् (श्रीमुख से निर्गत) यत् (जो) सुललितम् (सुमधुर) वाक्यम् हि (वाक्यराशि ही) वेदान्त-वाक्यम् (वेदान्त वाक्य) इदम् (जिनके (यह) सत्यम् (सत्य) च (एवं) वेदमयम् (वेदमय) जीवनम् (जीवन 'गीति') विरिञ्चि-आदिभिः 'देवैः'(ब्रह्मादि देवगण द्वारा) गीतम् 'भवति' (गायी जाती है)।।१।।

अनुवाद : इस दृश्यमान भूः आदि जगत व अदृश्यमान स्वर्गादिलोक समूह एवं सकल जीवों के प्रवृत्ति समूह तथा मनुष्यों की भोगाकांक्षा की निवृत्ति जिनसे होती है, जिनके अस्तित्व के कारण समस्त दृश्य जगत (मिथ्या होकर भी) सत्य प्रतीत हो रहा है, जिनके श्रीमुख से निःसृत सुमधुर वाक्यराशि ही वेदान्त वाक्य है, जिनकी सत्य तथा वेदमय जीवन गीति ब्रह्मादि देवगण द्वारा गायी जाती है।।२।।

ब्रूते श्रीभगवान् तु यस्य सततं वक्त्रारविन्दश्रिया
श्रीमद्भागवतादिवेदनिगमा ग्रन्थाश्च रूपं तथा ।
प्राप्ता यद्वचनामृताद् धृतवपुः श्रीरामकृष्णोऽधुना
वन्दे तं पुरुषं परं गुरुवरं सच्चित्सुखं हीश्वरम्।।२।।

अन्वय : तु (इसके अतिरिक्त) श्रीभगवान् (श्रीभगवान) यस्य (जिसके) वक्त्र-अरविन्द-श्रिया (श्रीमुखकमल आश्रय लेकर) ब्रूते (बात करते हैं) तथा च (तथा) यद्-वचन-अमृतात् (जिनके वचनामृत से समृद्ध होकर) श्रीमद्भागवत-आदि-वेद-निगमाः (श्रीमद्भागवत, वेद, पुराणादि) ग्रंथाः (ग्रंथ समूह) रूपम् (रूप) प्राप्ताः (प्राप्त) 'अभवन् (हुए हैं)' अधुना (वर्तमान में) 'सः एव (वही)' धृतवपुः श्रीरामकृष्णः (श्रीरामकृष्ण के रूप में शरीर धारण किये हैं – अवतरित हुए हैं) तम् हि (उस) सत्-चित्-सुखम् (सच्चिदानन्द स्वरूप) पुरुषम् (सर्वव्यापी पुरुष) गुरुवरम् (गुरुश्रेष्ठ) परम् (परम) ईश्वरम् (ईश्वर की) वन्दे (वन्दना करता हूँ)।।२।।

अनुवाद : इसके अतिरिक्त श्रीभगवान जिसके श्रीमुखकमल का आश्रय लेकर बात करते हैं तथा जिनके वचनामृत से समृद्ध होकर श्रीमद्भागवत, वेद, पुराणादि ग्रंथ रूप प्राप्त हुए हैं, वर्तमान में वही श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। मैं उस सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वव्यापी पुरुष, गुरुश्रेष्ठ श्रीपरमेश्वर की वन्दना करता हूँ।।२।।

पीत्वा पीत्वा परममृतं वीतसंसाररागा
हित्वा हित्वा सकलकलहप्रापिनीं स्वार्थसिद्धिम् ।
ध्यात्वा ध्यात्वा गुरुवरपदं सर्वकल्याणरूपं
नत्वा नत्वा सकलभुवनं पातुमामन्त्रयामः।।३।।[२]

अन्वय : 'वयम् (हम लोग)' परमम् (परम) अमृतम् (अमृत स्वरूप) 'तस्य (उनके) कथा (संसार वासना रूप रोगहरणकारी कथा)' पीत्वा पीत्वा (पान करके) वीत-संसार-रागाः (सन्तः) (संसार के प्रति वीतराग होकर) सकल-कलह-प्रापिनीम् (सभी कलह के मूल) स्वार्थ-सिद्धिम् (स्वार्थ साधना की वासना) हित्वा हित्वा (सम्पूर्ण रूप से त्याग करके) सर्व-कल्याण-रूपम् (सर्व कल्याणकारी) गुरुवर-पदम् (श्रीगुरुवर के पादपद्म) ध्यात्वा ध्यात्वा (सदा ध्यान करते हुए) च (एवं) तम् (उनको)' नत्वा नत्वा (निरन्तर प्रणाम करके) सकल-भुवनम् (समग्र जगत को) 'तत् अमृतम् (उस परमामृत के)' पातुम् (पान हेतु) आमन्त्रयामः (आमन्त्रित करते हैं)।।३।।

अनुवाद : हमलोग परम अमृतस्वरुप उनके संसार-वासनारूप रोगहरणकारी कथामृत-पान करके संसार के प्रति वीतराग होकर सभी कलह के मूल स्वार्थ साधना की वासना का सम्पूर्ण रूप से त्याग करके सर्व कल्याणकारी श्रीगुरुवर के पादपद्मों का ध्यान करते हुए एवं उनको निरन्तर प्रणाम

करके समग्र जगत को उस परमामृत के पान हेतु आमंत्रित करते हैं।।३।।

प्राप्तं यद्वै त्वानादिनिधनं वेदोदधिं मथित्वा
दत्तं यस्य प्रकरणे हरिहरब्रह्मादिदेवैर्बलम् ।
पूर्णं यत्तु प्राणसारैर्भौमनारायणानां
रामकृष्णस्तनुं धत्ते तत्पूर्णपात्रमिदं भोः।।४।।[३]

अन्वय : वेद-उदधिम् (वेदरूपी महासमुद्र का) मथित्वा तु (मंथन करके) यद् वै (जो) अनादि-निधनम् (अनादि अर्थात् अविद्या विनाश करनेवाली) 'ज्ञानम् (ज्ञान)' प्राप्तम् (प्राप्त हुए थे) 'च (एवं)' यस्य (जो) प्रकरणे (प्रयास से) हरि-हर-ब्रह्मा-आदि-देवै: (विष्णु, महेश्वर, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवगण का) बलम् ('उनके' ज्ञानरूप बल) दत्तम् (प्रदत्त) 'अभूत् (हुए थे)' तु (परन्तु) भौम-नारायणानाम् (पार्थिव नारायण अर्थात् पृथ्वी पर अवतरित श्रीभगवान के अवतारगण के) प्राण-सारै: (प्राण के सार अर्थात् चेतना द्वारा) पूर्णम् (परिपूर्ण) 'अभवत् (हुए थे)' भो: (हे) 'विश्ववासिन: (विश्ववासियो) शृणुत (श्रवण करो) एतत् (यह) तत् (उस) पूर्णपात्रम् (ज्ञानम् के पूर्णपात्ररूप) तनुम् (शरीर को) रामकृष्ण: (श्रीरामकृष्ण) धत्ते (धारण किये हैं) अर्थात् श्रीरामकृष्ण शरीर में रामकृष्ण रूपी जो सत्ता है, वही अखण्ड पूर्ण ज्ञानस्वरूप है।।४।।

अनुवाद : वेदरूपी महासमुद्र का मंथन करके जो अनादि अर्थात् अविद्या विनाश करनेवाली ज्ञानराशि प्राप्त हुई थी एवं जिस प्रकरण में विष्णु, महेश्वर, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवताओं द्वारा बल प्रदान किया गया। पार्थिव नारायण अर्थात् पृथ्वी पर अवतरित श्रीभगवान के अवतारों के प्राणों के सार अर्थात् चेतना से परिपूर्ण हैं। हे विश्ववासियों ! श्रवण करो, यह उस ज्ञान के पूर्णपात्ररूप शरीर को श्रीरामकृष्ण ने धारण किया है। अर्थात् श्रीरामकृष्ण शरीर में रामकृष्णरूप जो सत्ता है, वही अखण्ड पूर्ण ज्ञानस्वरूप है।।४।।

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः।।५।।[४]

अन्वयः धर्मस्य (धर्म के) स्थापकाय (जो संस्थापक) (एवं) सर्व-धर्म-स्वरूपिणे (जो सर्वधर्म के स्वरूप हैं) अवतार-वरिष्ठाय (अवतारों में श्रेष्ठ) रामकृष्णाय (श्रीरामकृष्ण को) ते (तुभ्यम्) (तुम्हें) नमः (प्रणाम)।।५।।

अनुवाद : जो धर्म के संस्थापक हैं, सर्वधर्म के स्वरूप हैं। मैं उन अवतारों में श्रेष्ठ श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करता हूँ।। ५।।

श्रीमद्वीरेश्वरानन्दगुरुपादाम्बुजन्मने।
वेदान्तवेद्यविज्ञात्रे नमस्त्यागैकदण्डिणे।।६।।

अन्वय : वेदान्त-वेद्य-विज्ञात्रे (जो वेदान्त के एकमात्र वेद्यवस्तु के विज्ञाता हैं) त्याग-एक-दण्डिणे (त्याग ही जिनका एकमात्र अवलम्बन है) श्रीमद्-वीरेश्वरानन्द-गुरु-पाद-अम्बु-जन्मने (उन श्रीमद् वीरेश्वरान्द जी महाराज, जो मेरे गुरु हैं, उनके श्रीचरणकमल में) नमः (प्रणाम)।।६।।

अनुवाद : जो वेदान्त के एकमात्र वेद्यवस्तु के विज्ञाता हैं, त्याग ही जिनका एकमात्र अवलबन है। उन श्रीमद्वीरेश्वरानन्द जी महाराज जो मेरे गुरु हैं, उनके श्रीचरणकमल में प्रणाम करता हूँ।।६।।

सच्चिदानन्दरूपाय नमः श्रीगुरुमूर्त्तये।
ज्ञानमहासिना शिष्याज्ञाननिधनकर्मणे।।७।।

अन्वय : ज्ञान-महा-असिना (ज्ञानरूप महा खड्ग द्वारा) शिष्य-अज्ञान-निधन-कर्मणे (शिष्य के अज्ञान का नाश करना ही जिनका कर्म है) सच्चिदानन्द-रूपाय (जो सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं) श्रीगुरुमूर्त्तये (श्रीगुरुमूर्ति को) नमः (नमस्कार)।।७।।

अनुवाद : ज्ञानरूप महा खड्ग द्वारा शिष्य के अज्ञान का नाश करना ही जिनका कर्म है, उन सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीगुरुमूर्ति को मैं नमस्कार करता हूँ।।७।।

दुस्तरार्णवसंसारे नृणामेका गतिर्हि या।
तस्यै श्रीसारदादेव्यै जगन्मात्रे नमो नमः।।८।।

अन्वय : दुस्तर-अर्णव-संसारे (दुस्तर समुद्र रूप इस संसार में) या हि (जो) नृणाम् (मनुष्य की) एका (एकमात्र) गतिः (गति) तस्यै (उन) जगन्मात्रे (जगन्माता) श्रीसारदादेव्यै (श्रीसारदादेवी को) नमः (प्रणाम)।।८।।

अनुवाद : दुस्तर समुद्र रूप इस संसार में जो मनुष्य की एकमात्र गति हैं। मैं उन जगन्माता श्रीसारदादेवी को प्रणाम करता हूँ।।८।।

चिदानन्दमखण्डस्थं विवेकानन्दरूपिणम् ।
नरेन्द्रमृषियोगीन्द्रं नारायणं नमाम्यहम्।।९।।

अन्वय : अहम् (मैं) अखण्डस्थम् (अखण्ड स्वरूप में अवस्थित) चित्-आनन्दम् (चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप) विवेकानन्द-रूपिणम् (विवेकानन्द रूप में) नरेन्द्रम् (नरोत्तम) ऋषि-योगीन्द्रम् नारायणम् (योगिश्रेष्ठ, नारायण ऋषि को) नमामि (प्रणाम करता हूँ)।।९।।

अनुवाद : अखण्ड स्वरूप में अवस्थित, चित्स्वरूप और आनन्द स्वरूप जो विवेकानन्द के रूप में अवतीर्ण हैं। मैं उन नरोत्तम, योगिश्रेष्ठ, नारायण ऋषि को प्रणाम करता हूँ।।९।।

ब्रह्मानन्दमहाराजं ब्रह्मज्ञं ब्रह्मरूपिणम्।
तन्मानससुतञ्चास्मि भूयो ब्रह्मर्षिमानत।।१०।।

अन्वय : ब्रह्मज्ञम्-ब्रह्मरूपिणम् (ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मस्वरूप) ब्रह्मर्षिम् (ब्रह्मर्षि) च (व) तत्-मानस-सुतम् (उनके अर्थात् श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र हैं) ब्रह्मानन्द-महाराजम् (ब्रह्मानन्द महाराज जी को) भूय: (बारम्बार) आनत: (प्रणत अर्थात् प्रणाम) अस्मि (होता हूँ)।।१०।।

अनुवाद : जो ब्रह्मज्ञ हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, ब्रह्मर्षि और उनके अर्थात् श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र हैं। मैं उन ब्रह्मानन्द महाराज जी को बारम्बार प्रणत अर्थात् नमन करता हूँ।। १०।।

वस्तु तावत् परानन्दो नित्यैक: परमेश्वर:।
चिदाभास: सदाभाति देवतिर्यङ्नरादिषु।।११।।

अन्वय : नित्य-एक: (जो एक और अद्वितीय, नित्य अर्थात् अपरिवर्तनीय) पर-आनन्द: (परम आनन्दस्वरूप हैं) परम-ईश्वर: (परमेश्वर स्वरूप हैं) चिदाभास: 'सन्' (चिदाभास रूप में प्रकाशित) तावत् (समग्र) देव-तिर्यक्-नर-आदिषु (देव, तिर्यक, प्राणी जाति और मनुष्य में) सदा-आभाति (सर्वदा प्रतिभासित हो रहे हैं) स: – एव (वही) वस्तु (वस्तु है)।।११।।

अनुवाद : जो एक और अद्वितीय हैं, नित्य अर्थात् अपरिवर्तनीय हैं, परम आनन्दस्वरूप हैं, परमेश्वर हैं, वही चिदाभास रूप में प्रकाशित समग्र देव, तिर्यक्प्राणी समूह व मनुष्य, सभी में सर्वदा प्रतिभासित हो रहे हैं, वही वस्तु हैं।।११।।

तद्वस्तुविषया वाणी परमेश्वरनि:सृता।
श्रुतिरूपेण जीवानां भवबन्धविमुक्तये।।१२।।

अन्वय : तत्-वस्तु-विषया-वाणी (उस वस्तु के स्वरूप-विषयक कथा) जीवानाम् (जीवों को) भव-बन्ध-विमुक्तये (संसार बंधन से मुक्ति के निमित्त) श्रुतिरूपेण (श्रुति के रूप में) परमेश्वर-नि:सृता (स्वयं श्रीपरमेश्वर के श्रीमुखपद्म से निर्गत) अभूत (हुआ है)।।१२।।

अनुवाद : उस वस्तु (ब्रह्म) के स्वरूप विषयक कथा जीवगण को संसार-बंधन से मुक्ति के निमित्त श्रुति के रूप में स्वयं श्रीपरमेश्वर के श्रीमुखपद्म से निर्गत हुई है।।१२।।

सुगीतेयं महागाथा हरिहरविरिञ्चिभि:।
विनि:सृताऽधुना सैव रामकृष्णमुखाम्बुजात्।।१३।।

अन्वय : इयम् (यह) महा-गाथा (महती गीतिकथा) हरि-हर-विरिञ्चिभि: (विष्णु, महेश्वर, ब्रह्मा द्वारा) सु-गीता (भलीभाँति गायी गयी) अधुना (वर्तमान में) सा-एव (वही गीतिकथा) रामकृष्ण-मुख-अम्बुजात् (भगवान श्रीरामकृष्ण के मुख कमल से) विनि:सृता (पुन: नि:सृत हुई है)।।१३।।

अनुवाद : यह महती गीतिकथा, जो भगवान विष्णु, महेश्वर तथा ब्रह्मा द्वारा भलीभाँति गायी गयी है, वर्तमान में वही गीतिकथा भगवान श्रीरामकृष्ण के मुखकमल से पुन: नि:सृत हुई है।।१३।।

साऽमृतविषयीभूता तापत्रयविघातिनी।
भक्तिविवर्धिनी तस्मिन् परमानन्ददायिनी।।१४।।

अन्वय : अमृत-विषयी-भूता (अमृत से परिपूर्ण) सा (यह कथा) तापत्रय-विघातिनी (त्रितापनाशिनी) तस्मिन् (श्रीपरमेश्वर के प्रति) भक्ति-विवर्धिनी (भक्तिवर्धिनी) 'च (तथा)' परम् आनन्द-दायिनी (परम आनन्ददायिनी है)।।१४।।

अनुवाद : अमृत से परिपूर्ण यह कथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, त्रितापनाशिनी, श्रीपरमेश्वर के प्रति भक्तिवर्धिनी तथा परम आनन्ददायिनी है।।१४।।

श्रुतिरपि श्रुताद्दूरे रामकृष्णकथामृतात्।
ये न सन्ति द्रवच्चित्ता: प्रेमाश्रुपुलकोद्गमा:।।१५।।

अन्वय : रामकृष्ण-कथा-अमृतात् (श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का) श्रुतात् अपि (श्रवण करके भी) ये (जिनका) द्रवत्-चित्ता: (द्रवित चित्त) प्रेम-अश्रु-पुलक-उद्गमा: (प्रेमाश्रु विसर्जन और देह में रोमांच उत्पन्न) सन्ति न (नहीं होता) 'तेभ्य: (उनसे)' श्रुति: (श्रुति) दूरे (दूर) अवतिष्ठति (अवस्थान करती है अर्थात् उनके निकट प्रकाशित नहीं होती)।।१५।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का श्रवण करके भी जिनका चित्त द्रवित न हो, प्रेमाश्रु विसर्जन और देह में रोमांच उत्पन्न न हो, उनसे श्रुति दूर अवस्थान करती है अर्थात् उनके निकट प्रकाशित नहीं होती।।१५।।

भृङ्गारिभ्यो हि भृङ्गारे भृङ्गराजाहृतं यथा।
तद्वीतारसपीयूषं मनोभृङ्ग: पिबेत्मुहु:।।१६।।

अन्वय : यथा (जैसे) भृङ्गारिभ्य: (मधुयुक्त पुष्प से) मधु (मधु) भृङ्गराज-आहृतम् (भ्रमरराज द्वारा आहरण होता है) (तथा) हि (उसी प्रकार) ब्रह्मानन्द महाराजेन (श्रीमद् स्वामी

ब्रह्मानन्द महाराज जी के द्वारा) भृङ्गारे ('श्रीरामकृष्ण गीतारूप' स्वर्ण पात्र में) गीता-रस-पीयूषम् (गीतारूपी अमृत रस अर्थात् गीतारूपी मधुर स्वादयुक्त अमृत) आहृत्य सञ्चितम् (आहरण कर संचित किया हुआ है) तत् (उस अमृत मधु) मनः- भृङ्गः (मन मधुकर) मुहुः (मुहुर्मुहुः अर्थात् बारम्बार) पिबेत् (पान करता रहे)॥१६॥

अनुवाद : जैसे मधुयुक्त पुष्प से भ्रमरराज मधु आहरण करके संचित करता है, वैसे ही श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज जी के द्वारा श्रीरामकृष्ण के मुखकमल से मधु अर्थात् अमृतवाणी आहरण कर श्रीरामकृष्ण गीतारूपस्वर्ण पात्र में संचित किया हुआ है। उस अमृत मधु का मन-मधुकर बारम्बार पान करता रहे॥१६॥

पिब श्रुतिसुखसारं भवामयभयहारम्।
महागमचयपारं कथामृतरसधारम्॥१७॥

अन्वय : महा-आगम-चय-पारम् (वेदादि महाशास्त्र समूह के उस पार से प्रवाहित) भव-आमय-भय-हारम् (भवरोग-भयहारिणी) श्रुति-सुख-सारम् (सुखस्वरूप श्रुति के सार अथवा समस्त शास्त्रों का सार, जो श्रवण सुखकर है) तम् (उस) कथा-अमृत-रस-धारम् (कथामृत रसधारा) पिब (पान करें)॥१८॥

अनुवाद : वेदादि महाशास्त्र समूह के उस पार से प्रवाहित भवरोग-भयहारिणी सुखस्वरूप श्रुतिकासार अथवा समस्त शास्त्रों का सार जो श्रवण सुखकर है, उस कथामृत रसधारा का पान करें॥१७॥

अपारभुवननारं गते तदखिलपारम्।
पयोजपदमुदारं तरीमिह कुरु सारम्॥१८॥
ॐ तत् सत् इति श्रीरामकृष्णगीतामङ्गलाचरणम्॥

अन्वय : तत् (इस) अपार-भुवन-नारम् (अपार भव-जलधि) अखिल-पारम् गते (सम्पूर्ण रूप से पार उतरने के लिए) उदारम् (उदार) पयोजपदम् (पादपद्म) तरीम् (नाव को) इह (इस संसार में) सारम् (सार) कुरु (करें)॥१८॥

अनुवाद : इस अपार भव-जलधि (संसार-समुद्र) को सम्पूर्ण रूप से पार उतरने के लिए साक्षात् भगवान श्रीरामकृष्ण के उदार पादपद्मरूपी नाव को ही इस संसार में सार करें॥१८॥ॐ इति श्रीरामकृष्णगीतामङ्गलाचरणम्॥

ॐ
श्रीरामकृष्ण-गीता
प्रथमोऽध्यायः
आत्मज्ञानम्

एकदा कलितीर्थेऽस्मिन् शुभे सुरधुनीतटे।
ख्यातपीठे यतिक्षेत्रे श्रीबेलुड़मठाजिरे॥१॥
सुखासने समासीनो मनो निरुध्य योगिराट्।
ब्रह्मानन्दमहाराजो भक्तानां ज्ञानिनां वरः॥२॥

अन्वय : एकदा (एक दिन) शुभे (पवित्र) सुरधुनी-तटे (गंगा के किनारे) अस्मिन् (इस) कलितीर्थे (कलियुग का तीर्थ) ख्यात-पीठे (सुविख्यात पीठस्थान) यति-क्षेत्रे (संन्यासियों का पुण्य क्षेत्र) श्रीबेलुड़-मठ-अजिरे (श्रीबेलूड़ मठ के प्रांगण में) भक्तानाम् (भक्तगण में) च (तथा) ज्ञानिनाम् (ज्ञानियों में) वरः (श्रेष्ठ) योगिराट् (योगिराज) ब्रह्मानन्द-महाराजः (श्रीमद् ब्रह्मानन्द महाराज) मनः (मन को) निरुध्य (स्थिर, एकाग्र और निर्विषयक करके) सुख-आसने (सुखासन में) समासीनः 'आसीत्' (विराजमान थे)॥१-२॥

अनुवाद : एक दिन पवित्र गंगा के किनारे इस कलियुग का परमतीर्थ सुविख्यात पीठस्थान और संन्यासियों का पुण्य क्षेत्र श्रीबेलूड़ मठ के प्रांगण में तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ योगिराज श्रीमद् ब्रह्मानन्द महाराज मन को स्थिर, एकाग्र और निर्विषयक करके सुखासन में विराजमान थे॥१-२॥

अस्मिन्नवसरे कश्चिद् भक्त आगम्य भक्तिमान्।
प्रणम्य शिरसा भूमौ तमुवाचेदमादरात्॥३॥

अन्वय : अस्मिन् (उसी) अवसरे (समय) कश्चिद् (कोई एक) भक्तिमान् (भक्तिमान या भावुक) भक्तः (भक्त) आगम्य (आकर) शिरसा (मस्तक से) भूमौ (भूमि पर) प्रणम्य (प्रणाम करके) तम् (उनको) आदरात् (श्रद्धापूर्वक) इदम् (यह) 'वाक्यम्' उवाच (कहने लगे)॥३॥

अनुवाद : उसी समय कोई एक भक्तिमान और भावुक भक्त आकर भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम करके उनको (महाराज जी को) श्रद्धापूर्वक यह कहने लगा॥३॥

श्रीभक्त उवाच

कथय भगवंस्तां नो रामकृष्णकथाशुभाम्।
वितृप्यते यथास्माकं मनश्च परिशुध्यते॥४॥

ऐकान्तिकेन जीवानां ययात्मा सुप्रसीदति।
प्रेमभक्तिं परां लब्ध्वा शान्तिमाप्नोति शाश्वतीम्।।५।।

अन्वय : श्रीभक्त: (श्रीमान भक्त महोदय) उवाच (ने कहा) भगवन् (हे महाराज) न: 'अस्मभ्यम्' (हमें) ताम् (वह) रामकृष्ण-कथा-शुभाम् (श्रीरामकृष्ण की पवित्र कथा) कथय (सुनाइये) यथा (जिससे) अस्माकम् (हमारे) मन: (मन) वितृप्यते (विशेष रूप से तृप्ति मिले) (तथा) ऐकान्तिकेन (सदा के लिए) परिशुध्यते (शुद्ध हो जाये, मलिनता से मुक्त हो जाये) यया (जिसके द्वारा) जीवानाम् (जीवमात्र को) आत्मा (आत्मा) सुप्रसीदति (अतीवप्रसन्नता का अनुभव हो) 'अपि च (एवं)' पराम् (परा) प्रेम-भक्तिम् (प्रेमभक्ति का) लब्ध्वा (अधिकारी होकर) शाश्वतीम् (शाश्वत) शान्तिम् (शान्ति) आप्नोति (लाभ करता है) ।।४-५।।

अनुवाद : श्रीमान भक्त महोदय ने कहा – हे महाराज! हमें श्रीरामकृष्ण की वह पवित्र कथा सुनाइये, जिसका श्रवण कर मन को विशेष रूप से तृप्ति मिले तथा सदा के लिए चित्त शुद्ध हो जाये, मलिनता से मुक्त हो जाये। जिसके द्वारा जीवमात्र को आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव हो एवं परम प्रेमरूपाभक्ति का अधिकारी होकर शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सके।।४-५।। **(क्रमश:)**

सन्दर्भ सूत्र – १ से ४ स्वामी विवेकानन्द जी की रचना है।

प्रेरक लघुकथा

सूर कहे वही बड़भागी, जो होवे त्यागी-बैरागी

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

उज्जयिनी के एक ब्राह्मण की तपस्या से प्रसन्न होकर उसके इष्ट देवता ने उसे एक फल देते हुए कहा, ''यह फल अमर फल है। इसे खाने से तुम्हें बुढ़ापा और मृत्यु का भय नहीं रहेगा।'' ब्राह्मण ने सोचा इस फल की मुझे क्या आवश्यकता? मुझे दीर्घकाल तक दारिद्र्य ही भोगना है। इसे पुण्यशील राजा को देने से वे चिरकाल तक सुशासन करेंगे। राजा के पास जाने पर उन्होंने सुवर्ण मुद्राएँ देकर फल ले लिया। बाद में वे सोचने लगे कि इसे खाने पर मैं तो वृद्ध नहीं होऊँगा, मगर रानी पिंगला कुछ वर्ष बाद अपना रूप-लावण्य और यौवन खो देगी। इसलिए फल की अमरता को बताकर उन्होंने रानी को उसे दे दिया। जिस पिंगला को राजा प्राणप्रिय समझते थे, वह विश्वासघातिनी थी। वह चंद्रचूड़ नामक अस्तबल के दारोगा पर आसक्त थी। उसने वह फल चन्द्रचूड़ को दे दिया चन्द्रचूड़ धन का लोभी था। वह धन के लालच में रानी से प्रेम करता। वास्तव में वह एक गणिका को चाहता था। गणिका को उसने जब वह फल दिया, तो उसने सोचा कि इसे पाने के अधिकारी राजा भर्तृहरि हैं। वे इसे खाने पर अजर-अमर रहेंगे। आगे भी उनके राज्य में प्रजा सुखी रहेगी। उसने जब राजा को वह फल दिया, तो फल वापस मिलने पर वे स्तब्ध रह गए। वे सोचने लगे कि इस फल को उन्होंने रानी को दिया था, वह उनके पास कैसे पहुँचा। जाँच करने पर उन्हें सारी बात मालूम हुई। उन्होंने अपने को धिक्कारते हुए कहा –

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्त:।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।।

– मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह (पिंगला) मुझे नहीं, दूसरे पुरुष को चाहती है। वह पुरुष (दारोगा) भी रानी को नहीं, किसी दूसरी स्त्री पर आसक्त है, वह स्त्री भी मुझे चाहती है। इसलिए रानी को, उस पुरुष को, गणिका को धिक्कार है। मुझे भी धिक्कार है और कामदेव को भी, क्योंकि उसने यह सारा अनर्थ कर डाला है।

राजा भर्तृहरि ने समझ लिया कि कपट-जाल में फँसकर लोग अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ लेते हैं। उन्हें संसार से विरक्ति हुई। उन्होंने राजसी पोशाक उतारकर प्रधानमन्त्री से कहा, ''स्त्रियों के भोगने से रोगों का, कुल से चरित्र च्युत

शेष भाग पृष्ठ ३३१ पर

क्षमाशील बनें, किन्तु कायर नहीं

डॉ. निधि श्रीवास्तव, जमशेदपुर

प्राय: लोग बात-बात में क्रोधित हो जाते हैं और अपने जीवन को अशान्त कर लेते हैं। राग-द्वेष से भरा जीवन अत्यन्त दुखमय होता है। किसी के किए गये कार्यों से जब मन को ठेस पहुँचती है, तो उसके प्रति क्रोध उबल पड़ता है और व्यक्ति उससे बदला लेने के लिये कई कुचक्र करता रहता है। लेकिन यदि जीवन में क्षमा को अपना लिया जाये, तो हम अपनी बहुत ऊर्जा और शक्ति को नष्ट होने से बचा सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हम कायर हो जायँ। हमें कवि की इस उक्ति का ध्यान रखना होगा –

क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन, विषरहित विनीत सरल हो।।

सत्य है कि क्षमाशीलता शक्ति की ही एक अभिव्यक्ति है। दुर्बलों के लिये समझौता एक सही शब्द हो सकता है, क्षमाशीलता नहीं। क्षमाशीलता का तात्पर्य यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि यह अभद्रता, आक्रामकता या पीड़ा की स्वीकारोक्ति या उपेक्षा है। क्षमाशीलता पूरी तरह सचेतन एवं सोच-समझ कर लिया गया निर्णय है, जिसका उद्देश्य स्वयं को क्रोध, विद्वेष एवं प्रतिशोध जैसे भावों से बाहर निकालना है। वह व्यक्ति जिसने दुख और पीड़ा पहुँचाया हो, उसके प्रति घृणा प्रतिशोध नहीं रखकर उसके कल्याण की कामना ही क्षमाशीलता है। यह एक ऐसा दिव्य एवं सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा हृदय में अन्तर्निहित नकारात्मकता एवं अशान्ति का स्थान धीरे-धीरे शान्ति एवं स्थिरता लेने लगती है। क्षमाशीलता एक अत्यन्त ही संवेदनशील गुण है, जो शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर को भावनात्मक सुरक्षा एवं प्रगति देती है। क्रोध, प्रतिरोध एवं प्रतिशोध ये सभी भावनाएँ कई प्रकार के मनो-दैहिक एवं मानसिक रोगों का कारण हैं। मनोचिकित्सा के क्षेत्र में इनके निदान के रूप में क्षमा करने की प्रवृत्ति को विकसित करने की सलाह मनोवैज्ञानिक देते हैं। तनाव, आक्रामक व्यवहार, हीन भावना, अवसाद, बेचैनी, चिड़चिड़ापन जैसे मनोविकार उस व्यक्ति या परिस्थिति को क्षमा न कर पाने की स्थिति की उपज हो सकते हैं, जिनके कारण कोई आघात, गहरी पीड़ा या अपमान हुआ हो। ऐसी परिस्थिति में क्षमा करनेवाला व्यक्ति ही जीवन में आगे बढ़ सकता है। क्षमाशीलता ही स्वस्थ सम्बन्धों, मानसिक एवं भावनात्मक स्थिरता, शान्ति एवं आत्मसम्मान की नींव है, इसे प्रयास करके आत्मसात् करने में ही आत्मिक उन्नति है। यही कारण है कि विभिन्न धर्मों में क्षमाशीलता के गुण को सर्वोपरि माना गया है।

क्षमाशीलता का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि यह पीड़ित होने की हीन-भावनावाली दुखद मन:स्थिति से व्यक्ति को बाहर निकलने में सहायक होती है। दर्द-छटपटाहट और अपमानित होने का कष्ट जिसे किसी व्यक्ति ने सहा है और यह पीड़ा जिसके कारण मिली है, उसको यदि हृदय से क्षमा कर दिया जाय, तो यह दर्द उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व का अहम् हिस्सा नहीं बनेगा, अन्यथा उस परिस्थिति से बाहर निकलना और अपने व्यक्तित्व को बचा पाना सम्भव नहीं है। क्षमा करना एक ऐसा सशक्त भाव है, जो व्यक्तित्व की गरिमा, शक्ति एवं प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखते हुए शान्ति एवं सन्तुष्टि प्रदान कर आत्मिक विकास के पथ पर अग्रसर कर सकता है। अत: क्षमाशील बनें और जीवन को शान्ति, मधुरता के सुवास से सुरभित करें। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (४३)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

समाचार की नींव कितनी दुर्बल होती है

महुला के निकट बिनकार गाँव में, अन्नाभाव से एक व्यक्ति ने आत्महत्या कर लिया है और एक अन्य व्यक्ति वैसा ही करने को तैयार है, यह समाचार पाकर हम लोग उस गाँव की हालत देखने गये। जो व्यक्ति आत्महत्या करने को उद्यत था, उसने आर्तनाद करते हुए हमें अपने दु:ख-कष्ट की सारी कहानी सुनाई और हमें अपना घर दिखाने ले गया। देखा कि उसके बहुत-से बाल-बच्चे हैं। हम उन लोगों को तथा गाँव के और भी अनेक लोगों को टिकट दे आये। लौटकर महुआ पहुँचते ही हमने उसका विवरण लिखकर मठ को भेज दिया।

अगले दिन हम लोग चावल वितरण कर रहे थे, तभी बिनकार गाँव के सभी लोग एक-एक कर आये और चावल ले गये। परन्तु जो व्यक्ति आत्महत्या करने को उद्यत था, वह सबके बाद आया और मैंने देखा कि वह अब 'वही आदमी' नहीं रह गया है ! उसने आते ही मुझसे पूछा कि हम लोग नगद रुपये-पैसे देकर सहायता करते हैं या नहीं! जब उसने देखा कि हम लोग तो केवल चावल ही दे रहे हैं, तो वह वापस लौट गया। पूछताछ करने पर पता चला कि एक व्यक्ति ने उदरशूल के कारण आत्महत्या की थी और यह व्यक्ति अन्न के अभाव में आत्महत्या करने जा रहा था, यह बात भी झूठ थी।

उस दिन का विवरण मठ में भेजने के बाद देखा कि हमारे पिछले दिन का विवरण 'वसुमती' में प्रकाशित हुआ है। सोचा कि यदि कोई शत्रुतापूर्वक उसे मजिस्ट्रेट साहब को दिखाए, तो मुझे बड़ा ही संकुचित होना पड़ेगा। मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द को लिख दिया कि अब से मेरे गोपनीय पत्रों को समाचार-पत्रों में न छपवाया जाए।

वस्त्र-वितरण तथा भरपेट भोजन

उसी समय मठ से नये-पुराने बहुत-से कपड़े वितरण करने हेतु आये। बहरमपुर के सुधांशु शेखर बागची महाशय ने महुला में आकर कहा, "ये कपड़े तो सबको पूरे नहीं पड़ेंगे। मैं बहरमपुर से और भी कई सौ वस्त्र एकत्र करके ले आऊँगा।" उसके प्रयासों से कुछ दिनों के भीतर ही बहरमपुर से बहुत-से नये कपड़े आ गये। मजिस्ट्रेट साहब को प्रस्ताव भेजा गया कि वे महुला में आकर अपने हाथ से लोगों को ये वस्त्र प्रदान करें। उन्होंने स्वीकृति दी। इसके बाद हम लोगों ने अभावग्रस्तों को भरपेट खिलाने के बाद वस्त्र देने की व्यवस्था की।

इसी उपलक्ष्य में मठ से स्वामी त्रिगुणातीतानन्द महुला आये और मजिस्ट्रेट साहब को धन्यवाद देते हुए एक प्रबन्ध का पाठ किया। मैंने भी साहब को धन्यवाद देते हुए कुछ कहा। उत्तर में साहब ने जो कुछ कहा था, उसे बाद में बहरमपुर से लिखकर भी भेज दिया था। वस्त्र-वितरण के बाद पीड़ितों को भोजन के लिये बैठा दिया गया।

उस दिन निकटवर्ती सुजापुर ग्राम की नीलकोठी तथा रेशमकोठी के मैनेजर अलेग्जेंडर केओ (Keogh) साहब भी निमंत्रित होकर वहाँ आये थे। महारानी स्वर्णमयी के सहकारी मैनेजर की निगरानी में साहबों तथा अन्य समागत अतिथियों के जलपान की व्यवस्था हुई।

वस्त्र-वितरण के बाद साहब ने जलपान किया और बहरमपुर चले गये; परन्तु दुर्भिक्ष-सहायता-समिति के सचिव नृत्यगोपाल बाबू तथा डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर आदि शाम तक वहीं रहे।

दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों के भोज हेतु दाल-भात, एक सब्जी, दही तथा गुड़ की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक अभावग्रस्त व्यक्ति को करीब आधा सेर भात परोसा जाता, परन्तु दाल आने के पूर्व ही वह प्राय: सारा भात सूखा ही खा जाता। मैंने जब दाल में मिलाकर खाने को कहा, तो सभी बोल उठे, "ठीक है, अब हम लोग दाल-भात खाएँगे।" इसके बाद दाल, सब्जी, दही तथा गुड़ के साथ उन लोगों ने इतना भात खाया कि मैं देखकर विस्मय से अवाक् रह

गया। मुसलमानों की टोली भी कोई छोटी न थी। उन लोगों के लिये चिउड़ा मँगाया गया। उन लोगों ने चिउड़ा-दही तथा गुड़ खाया और अन्त में फिर भात खाने को बैठ गये। हजार से भी अधिक दुर्भिक्ष-पीड़ितों को एक स्थान पर बैठाकर खिलाने का मेरे जीवन का यह पहला अनुभव था। इसीलिये उन लोगों को, उस तरह का विराट् खाना देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था।

उस दिन अतुल चम्पटि का संकीर्तन-दल अचानक ही महुला में आ पहुँचा था और उसने अपने कीर्तनानन्द से सभी श्रेणी के लोगों को अपार आनन्द प्रदान किया। जलाभाव के कारण प्राय: नष्ट हो चुकी नई धान की फसल उस दिन संध्या को हुई थोड़ी-सी वर्षा के कारण बच गयी और भोजन का वह स्थान भी स्वच्छ हो गया। इन्हीं दिनों महुला के सड़क का कार्य भी आरम्भ हुआ था।

अर्थाभाव, कातर प्रार्थना और आशातीत सहायता

मठ से त्रिगुणातीत के लिये बुलावा आया। मठ द्वारा उन्हें दिनाजपुर के निकट बिरोल गाँव में एक सहायता-केन्द्र खोलने के लिये भेज दिया गया। वह केन्द्र आरम्भ होने के बाद दुर्भिक्ष-कोष में बड़ा अभाव दीख पड़ा। महुला में मठ से निर्देश आया कि नये सहायता-प्रार्थियों का नामांकन रोक दिया जाये, परन्तु प्रतिदिन आठ-दस नये लोगों का नाम चढ़ाये बिना काम नहीं चल सकता था।

उस समय एक दिन मैंने दरवाजे में भीतर से किल्ली लगा ली और ठाकुर के समक्ष रो-रोकर प्रार्थना करने लगा, ''हे लाज रखनेवाले प्रभो, तुम तो देख रहे हो कि जो लोग तुम्हारे अक्षय भण्डार से सहायता पाते हैं और प्रतिदिन जो नये लोग नाम लिखाने आते हैं, उनकी हालत कितनी दयनीय है! मुझे कार्यक्षेत्र में उतारने के बाद, ऐसी परिस्थिति में यदि तुम्हारा कार्य अपूर्ण रह जाये, तो वह भी तुम्हारी इच्छा !''

द्वार खोलने के बाद मेरी समझ में आया कि इस तरह की प्रार्थना के फलस्वरूप मेरे मन-प्राण खूब हल्के हो गये हैं और मैं मानो अनेक तीर्थों में अवगाहन करके पवित्र हो गया हूँ।

ठीक इसके बाद ही मद्रास से स्वामी रामकृष्णानन्द के एक पत्र से सूचना मिली कि एक मद्रासी सज्जन ने हमारे दुर्भिक्ष-कोश में एक हजार रुपये भेजे हैं। अगले दिन के पत्र से ज्ञात हुआ कि उन सज्जन ने और भी पाँच सौ रुपये भेजे हैं। इन समाचारों को पाकर मैं अत्यन्त उत्साहित हुआ।

इन डेढ़ हजार रुपयों की प्राप्ति के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उत्साहित होकर उन्होंने फिर कभी मुझे सहायता देने के विषय में सावधान करते हुए पत्र नहीं लिखा। इसके बाद मुझे वैसा कोई धनाभाव भी नहीं हुआ।

महुला में हम दोनों – सुरेन तथा मैं बारी-बारी से कुछ ब्राह्मणों के घर में भोजन किया करते थे। ऐसा अधिक दिन नहीं चल सकेगा, सोचकर मैंने मठ को लिखा कि वे हम दोनों के खाने के लिये अलग से कुछ सहायता भेजें। दुर्भिक्ष-भण्डार का एक पैसा भी अपने लिये खर्च करने की इच्छा मुझे नहीं हुई। इसी भाव के दो-तीन पत्र मठ में लिखने के बाद मठ से पत्र आया कि फिलहाल यह खर्च दुर्भिक्ष-भण्डार से ही चलाया जाये।

परन्तु मैं इससे सन्तुष्ट नहीं हो सका। चौखम्बा (वाराणसी) के रईस बाबू प्रमदादास मित्र मेरे बड़े अनुरागी थे। हमारा अपना खर्च चलाने हेतु मैंने उन्हें कुछ भेजने को लिखा। सुरेन के लिये ही अधिक चिन्ता थी। उसके नौकरी छोड़कर मठ में आते ही स्वामीजी ने उसे मेरे पास भेज दिया था। साधु के सुख-दुखमय जीवन के विषय में उसे जरा भी अनुभव नहीं था।

* * *

इसके बाद से हमारे सेवाव्रत के विकास तथा प्रसार का विषय किसी के लिये भी अज्ञात नहीं रहा। स्वामीजी ने अपने कई पत्रों में, मुझे सेवाधर्म की महत्ता के विषय में जो उपदेश दिये थे, उनकी 'पत्रावली' को पढ़कर वह भी सब लोग जानते हैं।

सेवाधर्म का प्रारम्भ १८९७ ई. में अन्नपूर्णा-पूजा के दिन हुआ। दुर्भिक्ष का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाने के बाद कुछ अनाथ बालकों को लेकर सारगाछी-आश्रम की स्थापना हुई। करीब १४-१५ साल दूसरों के घर में ही हमारे इस आश्रम का कार्य परिचालित हुआ था। इसके बाद, करीब २२ वर्ष पूर्व (१९१२ ई. में) इस आश्रम के लिये अपनी जमीन खरीदी गयी।

हमलोग भले ही इस बात से पूर्णत: अनभिज्ञ हों, तथापि स्वदेश-वत्सल महाप्राण स्वामीजी के शुभ पदार्पण के साथ-ही-साथ उनके चिर-अभीष्ट सेवाधर्म के साथ नवयुग के अरुणोदय से भारत-गगन उद्भासित हो उठा है।

(समाप्त)

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६७)

स्वामी भूतेशानन्द

(४३)

प्रश्न – महाराज ! रामकृष्ण मिशन की स्थापना दिवस पर स्वामीजी ने कहा था कि संसार के सभी देशों का भ्रमण कर उनकी यह धारणा हुई कि संघ के बिना कोई बड़ा कार्य सम्भव नहीं है। उसके बाद ही कह रहे हैं कि नया सम्प्रदाय निर्माण करने के लिये मेरा जन्म नहीं हुआ। तब तो हमारे संघ को भी सम्प्रदाय कहा जाता है।

महाराज – इसे असाम्प्रदायिक सम्प्रदाय कहा जाता है – Non sectarian sect.

– क्या यह एक स्व-विरोधी बात नहीं हुई?

महाराज – इसका तात्पर्य ग्रहण करना होगा।

– सम्प्रदाय ही तो हुआ। इसमें कठिनाई कहाँ है?

महाराज – वे कह रहे हैं – असाम्प्रदायिक। साम्प्रदायिक माने sectarian। सम्प्रदायवादी कहते हैं – हमारा जो सम्प्रदाय है, वही एकमात्र सम्प्रदाय है। अन्य जो सम्प्रदाय हैं, वे सम्प्रदाय ही नहीं हैं।

– किन्तु सम्प्रदाय का अर्थ तो वह नहीं होता है महाराज। जिस किसी भी धर्म-मत को सम्प्रदाय कहा गया है।

महाराज – किन्तु साम्प्रदायिक किसे कहते हैं?

– कट्टरता को ही साम्प्रदायिक कहते हैं।

महाराज – किन्तु जहाँ कट्टरता नहीं है, वह असाम्प्रदायिक है, सम्प्रदायहीन नहीं है।

प्रश्न – स्वामीजी कहते हैं – ब्रह्मज्ञान की सीमा होती है, हमारे प्रभु-भाव की सीमा नहीं होती है।

महाराज – वह तो है, उससे क्या हुआ?

– इसे हमलोग कैसे समझेंगे? ब्रह्मज्ञान की सीमा नहीं होती है, यही तो हमलोग जानते हैं।

महाराज – यहाँ असम्भावना दिखायी गयी है। यदि ब्रह्मज्ञान की सीमा हो, तो ठाकुर के भाव की सीमा नहीं होती? असम्भव। यह हुआ reduced to absurdity। इसकी सम्भावना नहीं है। यदि वह होगी, तब भी इसकी सम्भावना नहीं है।

– किन्तु ठाकुर को तो सगुण ब्रह्म कहा जाता है।

महाराज – फिर तुम्हारे वेदान्त का सगुण ब्रह्म ! सगुण ब्रह्म माने क्या? ब्रह्म – फिर सगुण, निर्गुण, त्रिगुण और द्विगुण क्या?

– वैसे ही समझना पड़ रहा है महाराज।

महाराज – समझो, किन्तु उसके द्वारा सीमित मत करो। ब्रह्म शब्दातीत है, इसे याद रखो। इसी प्रकार समझना होगा। जिस प्रकार भी समझो, किन्तु शब्द के द्वारा उसे परिच्छिन्न मत करो।

– किन्तु जब 'प्रभु' कह रहे हैं, तभी तो परिच्छिन्न हो जा रहा है?

महाराज – कह रहे हैं – परिच्छिन्न नहीं होता। ब्रह्म क्या है, मुँह से नहीं कहा जा सकता। यह बात बार-बार उन्होंने कहा है।

– किन्तु उनका जो सगुण रूप है, क्या वह मिथ्या है?

महाराज – एक बहुरूपिया का लाल रंग मिथ्या है या पीला रंग मिथ्या है?

– नीला, पीला ये जो बातें कह रहे हैं, इसी से तो वह सीमित हो जा रहा है।

महाराज – इसका अर्थ यही है कि वे क्या नहीं हैं, उसे नहीं कह पा रहे हैं। उपनिषद में क्या कहा गया है – '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**'। यहाँ ऐसे समझना होगा कि वे लाल भी हैं, नीला भी हैं और पीला भी हैं, वे क्या नहीं है, उसे कह नहीं पा रहा हूँ। कभी कोई रंग ही नहीं रहता है।

प्रश्न – स्वामीजी ने किसी स्थान पर कहा है – श्रेष्ठ नेता वे ही हैं, जो दूसरों के ऊपर शिशु जैसा शासन करते हैं। शिशु को देखकर लगता है कि वह दूसरों पर निर्भर है, किन्तु वह घर का राजा होता है।

महाराज – हाँ। जैसे स्वामीजी शिशु हैं। स्वामीजी की कल्पना करो तो।

– स्वामीजी ने कहा है, मेरी धारणानुसार नेतृत्व का यही मूल रहस्य है।

महाराज – समझा। किन्तु वे डाँटने-फटकारने में भी कम नहीं थे।

– ऐसा कैसे होता है महाराज?

महाराज – तत्त्व और अनुशीलन। शुद्धानन्द स्वामी को (स्वामीजी) कह रहे हैं – ''तुम्हारे नंगे सिर पर सोपारी रखकर खड़ाऊँ से तोड़ूँगा।''

– आपने एक पद्धति का जीवन में बहुत प्रयोग किया है। आप किसी को कुछ नहीं कहते हैं, किन्तु उसी से नियन्त्रण करते हैं, कार्य भी हो जाता है।

महाराज – एक दिन माँ नाराज हो गयी हैं। बच्चे को कहती हैं – माँ ! यह दो, वह दो, उसे दो, किन्तु तुम मुझे क्या देते हो? लड़के ने थोड़ा चुप होकर कहा प्रेम। तात्पर्य ग्रहण करना होगा। शाब्दिक अर्थ लेने से नहीं होता है। प्रेम के द्वारा नियन्त्रण किया जा सकता है।

खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) बहुत सरल थे। तब वे कोषाध्यक्ष थे। उनके पास हस्ताक्षर कराने के लिये जाने पर कहते – ''कहाँ हस्ताक्षर करना होगा? 'यहाँ' कहने पर हस्ताक्षर कर देते।

प्रश्न – वेदान्त और उसके व्यवहार के सम्बन्ध में स्वामीजी ने कहा है – चार प्रकार के लोग समाज का शोषण करते हैं – शक्तिशाली व्यक्ति, बुद्धिमान, धनी और पुरोहित वर्ग।

महाराज – वाल्टेयर ने कहा है – जब तक पृथ्वी के शेष पुरोहितों के अस्त्रादि द्वारा शेष राजाओं के कण्ठ पोषित हो रहा है, तब तक पृथ्वी में शान्ति नहीं होगी।

– जेनेवा में रहते थे। समीप के देश में उनका एक घर था। वे कहते थे – जो लोग स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करते हैं, उन्हें ऐसे स्थान पर रहना चाहिए कि सहजता से देश छोड़कर जा सकें। यूरोप में कोई व्यक्ति सरलता से एक देश से दूसरे देश में जा सकता है।

महाराज – कई लोगों का विचार है कि देश-देशान्तर की सभी सीमा-रेखाओं को हटा देना चाहिए।

– वहाई जाति के लोग ऐसा ही सोचते हैं। एक ईश्वर, एक पृथ्वी, एक धर्मगुरु।

महाराज – भगवान ने एक ही पृथ्वी का निर्माण किया है। मानव ने उसे खंडित किया है।

– ठाकुर तो कह कर ही गये हैं – दो भाई जमीन पर रस्सी फेंककर कह रहे हैं – यह भाग मेरा, वह भाग तुम्हारा।

महाराज – ठीक तो।

प्रश्न – पिछले सप्ताह कुछ साधु चर्चा कर रहे थे – साधु जीवन में नितान्त करणीय वस्तु क्या है? दस लोगों ने दस प्रकार से व्याख्या किया। हमलोग आपसे उस विषय में जानना चाहते हैं।

महाराज – पहले इस सम्बन्ध में इन दस लोगों के विचार मुझे जानना होगा। (सभी हँसते हैं)

– एक ने कहा है – साधु-जीवन में प्रमुख आवश्यक बात है नम्रता। दूसरे के मतानुसार ईश्वरदर्शन। अन्य कई लोगों के मतानुसार त्याग, स्वामीजी का आदर्श, श्रीरामकृष्ण का आदर्श इत्यादि।

महाराज – सबका भिन्न-भिन्न विचार है अथवा सबके विचार एक वस्तु के विभिन्न रूप हैं। तुम क्या कहते हो?

– मैं कहता हूँ, सब विचार मिलाकर एक है। महाराज! वही सबसे अच्छा मार्ग है क्या?

महाराज – सब कुछ जुड़ने के बाद और कुछ जुड़ेगा क्या?

– आप क्या कहते हैं?

महाराज – सभी गुणों का एकत्र समावेश ही साधु का आदर्श होगा। सभी गुणों और सभी मतों को एकत्र करो। यदि इसमें से किसी को छोड़ दो, तो वह किसी साधु के लिये असम्पूर्ण, अधूरा आदर्श होगा।

प्रश्न – एक दिन बुद्ध महाराज को पूछा था – ब्रह्मानन्दजी से आपने कैसा आध्यात्मिक निर्देश प्राप्त किया था। उन्होंने कहा था – महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) कहते थे – ब्रह्मचर्य, सत्य–सत्य, ब्रह्मचर्य। यही उपदेश उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्द जी से प्राप्त किया था।

महाराज – ब्रह्मचर्य के व्याख्या की आवश्यकता है। क्या उन्होंने तुमसे ब्रह्मचर्य की व्याख्या की थी?

– नहीं।

महाराज – नहीं ! क्या बोल रहे हो? सामान्य संयम का अर्थ ब्रह्मचर्य नहीं है।

– हमलोगों को कुछ बताइये।

महाराज – अरे ! ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या केवल सामान्य संयम करना है? संसार में नपुंसक हैं, क्या वे सब ब्रह्मचारी हैं?

– निश्चय ही नहीं है।

महाराज – तब? 'मीरा कहे बिना प्रेम से नहीं मिले नन्दलाला।' **(क्रमशः)**

प्रश्नोपनिषद् (१४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच। मा मोहमापद्यथाहमेवैत-त्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः।।३।। (१९)

अन्वयार्थ – **वरिष्ठः** मुख्य **प्राणः** प्राण ने **तान्** उन (अभिमानियों) से **उवाच** कहा – **मोहम्** भ्रान्तिपूर्ण अभिमान को **मा** मत **आपद्यथ** प्राप्त होओ, **अहम्** मैं **एव** ही **एतत्** इस प्रकार **आत्मानम्** स्वयं को **पञ्चधा** पाँच रूपों में **प्रविभज्य** विभाजित करके **एतत्** इस **बाणम्** कार्य-करण (देह-इन्द्रिय) संघात को **अवष्टभ्य** सुदृढ़ करके **विधारयामि** विशेष रूप से धारण करता हूँ इति । (परन्तु) **ते** वे (देवगण) **अश्रद्दधानाः** अविश्वासी **बभूवुः** बने रहे।

भावार्थ – मुख्य प्राण ने उन (अभिमानी देवों) से कहा – भ्रान्तिपूर्ण अभिमान के वशीभूत मत होओ, मैं ही स्वयं को पाँच रूपों में विभाजित करके इस कार्य-करण (देह-इन्द्रिय) संघात को दृढ़ता प्रदान करके विशेष रूप से धारण करता हूँ। (परन्तु) वे (देवगण) अविश्वासी बने रहे।

भाष्य – तान् एवम् अभिमानवतः वरिष्ठः मुख्यः प्राणः उवाच उक्तवान् – मा मा एवं मोहम् आपद्यथ अविवेकतया अभिमानं मा कुरुत। यस्मात् अहम् एव एतत् बाणम् अवष्टभ्य विधारयामि पञ्चधा आत्मानं प्रविभज्य प्राण-आदि-वृत्तिभेदं स्वस्य कृत्वा विधारयामि। इति उक्तवति च तस्मिन् ते अश्रद्दधानाः अप्रत्ययवन्तः बभूवुः कथम् एतत् एवम् इति।।३।।

भाष्यार्थ – उन अभिमानियों के प्रति मुख्य प्राण ने कहा – नहीं, नहीं, भ्रान्ति के अधीन होकर अविवेकिता के कारण ऐसा अभिमान मत करो; क्योंकि मैंने ही प्राण, अपान आदि वृत्तियों (कार्यों) के भेद से, स्वयं को पाँच रूपों में विभाजित करके इस बाण अर्थात् शरीर को आधार देकर धारण कर रखा है। उस (मुख्य प्राण) के ऐसा कहने पर, उन लोगों को उस पर विश्वास नहीं हुआ कि ऐसा कैसे हो सकता है? ।।१९।।

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रतिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति।।४।। (२०)

अन्वयार्थ – **सः** वह (मुख्य प्राण) **अभिमानात्** अभिमान के कारण **इव** मानो **ऊर्ध्वम्** (शरीर को त्यागकर) ऊपर अर्थात् बाहर **उत्क्रमते** निकलने को उद्यत हुए। **तस्मिन् उत्क्रामति** उनके बाहर निकलने को प्रवृत्त होने से **अथ** तत्काल **इतरे** अन्य **सर्वे एव** सभी **प्राणाः** प्राण **उत्क्रामन्ते** निकलने लगे **च** और **तस्मिन् प्रतिष्ठमाने** उनके स्थिर हो जाने पर **सर्वे एव** सभी **प्रातिष्ठन्ते** सुस्थिर हो गये। **तत्** इस विषय में दृष्टान्त है **यथा** जैसे **मधुकर-राजानम्** मधुमक्खियों के राजा के **उत्क्रामन्तम्** ऊपर उठने पर **सर्वाः एव** सभी **मक्षिकाः** मधुमक्खियाँ **उत्क्रामन्ते** उड़ जाती हैं **च** और **तस्मिन् प्रतिष्ठमाने** उनके सुस्थिर बैठ जाने पर **सर्वाः एव** सभी **प्रतिष्ठन्ते** बैठ जाती हैं, **एवम्** उसी प्रकार **वाक्** वाणी **मनः** मन **चक्षुः** नेत्र **च** और **श्रोत्रं** कर्ण ने (**अकुर्वन्** किया)। **ते** वे **प्रीताः** (उसके माहात्म्य-बोध से) प्रसन्न होकर **प्राणं** प्राण की **स्तुन्वन्ति** स्तुति करने लगीं।

भावार्थ – वे (मुख्य प्राण) अभिमान के कारण मानो (शरीर को त्यागकर) ऊपर अर्थात् बाहर निकलने को उद्यत हुए। उनके बाहर निकलने को प्रवृत्त होने से तत्काल अन्य सभी प्राण निकलने लगे और उनके स्थिर हो जाने पर सभी सुस्थिर हो गये। इस विषय में दृष्टान्त है, जैसे मधुमक्खियों के राजा के ऊपर उड़ने पर सभी मधुमक्खियाँ उड़ जाती

शेष भाग पृष्ठ ३३१ पर

वही भाग्यशाली है, जो पूर्ण हो गया

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

आचार्यों ने कहा है – शरीर व्याधि का मंदिर है। इतना हम प्रवचन सुनते हैं, किन्तु आचरण में नहीं लाते हैं। भगवान कहते हैं। इसके लिए हमारा मन ही उत्तरदायी है। भगवान को भूलकर हम आत्मघात कर रहे हैं। हमारे सुख-दु:ख का कारण हम ही हैं। हम स्वस्थ रहें, इसके लिए नियमित जीवन बिताना पड़ेगा। आचार्यों ने कहा है – शरीर ही तुम्हारा सब धर्मों का माध्यम है। कोई भी अच्छा कर्म करे उसका साधन, शरीर और मन है। जिन लोगों ने शुरू में मन को समझाया है, उनको पछताना नहीं पड़ेगा। आध्यात्मिक व्यक्ति को शारीरिक स्वास्थ्य का अधिक ध्यान देना चाहिए, क्योंकि शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा, तो भगवान का भजन भी नहीं कर पाओगे। आध्यात्मिक जीवन एकदम व्यक्तिगत है। मन में ये भाव दृढ़ रहे कि यह संसार प्रभु ने हमें दिया है, तो हम संसार में प्रभु की ही सेवा करेंगे।

महात्माओं ने कहा है कि यदि तुम सुखी होना चाहते हो,तो भगवान का नाम जप करते रहो। सामान्य अवस्था में हम लोग धैर्य को जल्दी खो बैठते हैं। जो चीजें अपने हाथ में नहीं हैं, उसके लिए हम बेचैन हो जाते हैं। इसके लिए उपाय यह है कि हम प्रतीक्षा करते रहें। धैर्य रखने का धीरे-धीरे प्रयत्न करते रहें। हमें अपने मन को किसी सत्कार्य में लगाकर रखना है, नहीं तो मन किसी जगह ले जाकर पटक देगा। यदि हमने मन को किसी काम में नहीं लगाया, तो मन हमको राग और द्वेष में लगायेगा। खाली मन शैतान का कारखाना है, ज्योंही हमारा काम समाप्त हुआ, तुरन्त उसको भगवान के नाम-जप में लगाना है। इसके लिये ऐसी योजनाएँ बनाकर रखो कि मन एक क्षण भी खाली न रहे।

मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है। अत: हमें अपने मन को देखने का अभ्यास करना है। अपने आप में हमें सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारी हजारों इच्छायें हैं। इसलिए हम बहुत दुखी रहते हैं। भगवान ही सदा नये हैं, बाकी सब कुछ पुराना है, जैसे आकाश पर किसी का प्रभाव नहीं होता है, वैसे ही भगवान पर कभी भी किसी बात का प्रभाव नहीं होता है। हमारी आत्मा एकदम निर्विकार आकाश के समान है। हमें द्रष्टा बनने की कोशिश करनी है। हम अपरिवर्तनशील वेदान्त द्रष्टा हैं। हमें उसी अखण्ड सत्ता के सगुण रूप भगवान की भक्ति करनी है। भक्ति में अखण्ड प्रेम रहता है। भगवान में हमारा मन अखण्ड रहे, उसी का नाम भक्ति है। हमारा मन ईश्वर के पास ही है, लेकिन हम उसे देख नहीं सकते। हमलोगों के जीवन में भगवान से प्रार्थना सबसे अच्छा उपाय है। प्रभु से बोलना – हे प्रभु, हम कुछ जानते नहीं हैं, आप ही हमारे मन को सुधारकर अपनी भक्ति में लगा सकते हैं। प्रभु ऐसा करो कि मेरे कारण किसी को कष्ट न हो। ऐसा करते-करते जब मुझे अपने हृदय में भगवान मिल जाएँगे, तो सब जगह भगवान ही भगवान दिखेंगे।

भगवान की भक्ति के लिये हमें वैराग्य का सहारा लेना पड़ेगा। वैराग्य का सीधा-साधा अर्थ है, भगवान के विपरीत ले जानेवाले सबको छोड़ो और भगवान की ओर ले जानेवाले सबको पकड़ो। २४ घंटों में ४-५ मिनट अपने भीतर देखने की कोशिश करो कि मेरी कौन-सी क्रिया भगवान से जोड़ रही है और कौन-सी क्रिया भगवान से दूर कर रही है। भगवान में बाधक वस्तुओं को छोड़ना ही वैराग्य है।

कुसंग से बचो। जो कहते हैं, यह संसार ही सत्य है, उनसे बचो। जब तक संसार हमें व्यर्थ नहीं लगेगा, तब तक वह नहीं छूटेगा। संसार की मूर्खताओं में न फँसें। हमारा जीवन विवेक पर आश्रित रहे। विवेक कहता है – तुम्हारा जीवन आवश्यकता के ऊपर आधारित होना चाहिए, कामनाओं और इच्छाओं पर नहीं। तभी तुम सुखी रहोगे। हमारे जीवन की परम आवश्यकता ईश्वर है। परमात्मा आनन्दस्वरूप हैं। यदि ईश्वर ने हमारे मन में इच्छायें दी हैं, तो इसी ईश्वर ने हमें विवेक भी दिया है। हमें इसी विवेक के आधार से आनन्द में रहना है। उस आनन्द की अवस्था में हमें किसी अभाव का बोध नहीं होता है। हम सदा सब प्रकार से आनन्द में रहते हैं। हमारी आत्मा हमेशा पूर्ण है, उसमें अपूर्णता नहीं है। भगवान के नाम-जप से ही मन आनन्दमय होता है। हमारा मन पूर्णता में प्रतिष्ठित रहेगा, तब हम आनन्द में रहेंगे। जो ईश्वर से जुड़कर पूर्ण हो गया, वह बहुत भाग्यशाली है। ○○○

रथयात्रा विशेष

भगवान श्रीजगन्नाथ और श्रीरामकृष्ण

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर

भगवान श्रीजगन्नाथ और श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण कभी भी श्रीजगन्नाथ पुरी नहीं गये। पर उन्हें श्रीजगन्नाथ के प्रति अतीव प्रेम तथा श्रद्धा थी। वे अपने भक्तों को पुरी जाकर जगन्नाथजी को आलिंगन करने को कहते। उन्हें गंगाजल, वृन्दावन-रज और जगन्नाथ के आट्के महाप्रसाद के प्रति अपार श्रद्धा थी। वे इन तीनों चीजों को ब्रह्मभाव से देखते थे। उनका विश्वास था कि जगन्नाथजी का महाप्रसाद सभी तरह के जाति-भेद, ऊँच-नीच मिटा देता है। ठाकुर के जीवन में हमें जगन्नाथ के प्रति उनकी श्रद्धा के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

श्रीरामकृष्ण जगन्नाथ पुरी क्यों नहीं गये?

समाधिस्थ होकर शरीरान्त हो जायेगा, यह सोचकर श्रीरामकृष्ण देव ने गया जाने से अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार के भाव के उदय होने के कारण को श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में ग्रन्थकार स्वामी सारदानन्द जी ने लिखा है – 'गया में जाने से शरीर नहीं रहेगा' – 'जगन्नाथपुरी जाने से सदा के लिए समाधिस्थ होना पड़ेगा।'

Ramakrishna in Samadhi. This photo was taken on 10 December 1881, at the studio of Bengal Photographers, Calcutta.

श्रीरामकृष्ण देव मथुरबाबू के साथ पुन: वाराणसी वापस आये। दो-चार दिन वहाँ रहने के बाद वाराणसी से गया जाने की मथुरबाबू को इच्छा हुई। किन्तु श्रीरामकृष्ण देव वहाँ जाने को असहमत थे। अत: उन्होंने यह विचार त्याग दिया। श्रीरामकृष्ण देव के श्रीमुख से हमने सुना है कि गयाधाम जाने के पश्चात् ही उनके पिताजी को स्वप्न में यह विदित हुआ था कि उनके घर पर श्रीरामकृष्ण देव का जन्म होगा और इसीलिए जन्म के बाद उनका नाम गदाधर रखा गया था। गया में श्रीगदाधर के पादपद्मों का दर्शन कर प्रेम-विह्वल हो उनसे अलग अपने शरीर-धारण की बात को कहीं वे एकदम भूल न जायें तथा सदा के लिए पुन: विलीन न हो जायँ, इसी भय से श्रीरामकृष्ण देव उस समय मथुरबाबू के साथ गया जाने को सहमत नहीं हुए थे, यह भी उन्होंने कभी-कभी हमसे कहा है। श्रीरामकृष्ण देव की यह दृढ़ धारणा थी कि जो पूर्वयुगों में श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण तथा श्रीगौरांगदेव आदि के रूप में आविर्भूत हुए थे, वे ही इस समय उनके शरीर का आश्रय कर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। इसलिए श्रीरामकृष्ण देव को उपरोक्त पितृस्वप्न से यह परिज्ञात होकर कि उनके निजी शरीर-मन का उत्पत्ति-स्थान गयाधाम है तथा जिन-जिन स्थानों में अन्यान्य अवतारों ने अपनी लीला-संवरण की है, उन स्थानों के दर्शन के लिए जाने की बात को सुनकर उनके हृदय में एक प्रकार के विचित्र भाव का संचार होते हुए हमने देखा है। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे कि उन स्थानों पर जाने से उनका शरीर नहीं रहेगा, वे ऐसी गहरी समाधि में मग्न हो जायेंगे कि वहाँ से उनका मन फिर कभी नीचे मनुष्य-लोक में वापस नहीं आयेग! क्योंकि गौरांगदेव के लीलासंवरण-स्थल श्रीजगन्नाथक्षेत्र या पुरीधाम जाने की जब बात उठी थी, उस समय भी उन्होंने यही भाव प्रकट किया था और केवल अपने ही सम्बन्ध में नहीं, वरन् यदि कोई भक्त किसी देवता-विशेष का अंश या विकास होता, तो उन्हें भावनेत्रों द्वारा यह विदित हो जाता था और उसके सम्बन्ध में भी वे उस देवता-विशेष के लीलास्थानों में जाने के लिए भी इसी प्रकार का अभिमत व्यक्त करके उसे वहाँ जाने के लिए निषेध करते थे। ...

१५ जुलाई, १८८५ को ठाकुर ने श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के लेखक मास्टर महाशय से कहा था, "तुम्हें यह मैं गुह्य बात सुना रहा हूँ। एकबार भावावेश में मुझे भगवान जगन्नाथ के प्रति अत्यधिक तीव्र प्रेम उत्पन्न हुआ, जैसा एक स्त्री का

प्रियतम के प्रति होता है। जगन्नाथ को मधुरभाव में आकर भेंटने के लिए मैंने हाथ बढ़ाया नहीं कि गिरकर हाथ टूट गया। उसने समझा दिया – 'तुमने शरीर धारण किया है, इस समय नर-रूपों में ही सख्य, वात्सल्य आदि भावों को लेकर रहो।'

मास्टर महाशय कहा करते कि श्रीरामकृष्ण ने अपने भक्तों को कई बार कहा था, 'मैं ही पुरी का भगवान जगन्नाथ हूँ !' एक बार उन्होंने मुझे पुरी जाने को कहा और समझा दिया कि वहाँ जाकर मुझे दर्शन कैसे करना है। बता दिया कि किस तरह भगवान जगन्नाथ को आलिंगन करना होगा। वहाँ जाकर मैं चिन्ता में पड़ गया, क्योंकि वह मुझे असम्भव सा लगा। ठाकुर के कथनानुसार मैंने अपने पास के कई सिक्के मन्दिर के गर्भगृह में नीचे फेंक दिये। सिक्कों की आवाज सुनकर पण्डे जैसे ही उन्हें उठाने के लिए दौड़े, तब मैं रत्नवेदी पर चढ़ गया और मैंने भगवान को आलिंगन किया। किसी ने यह देख लिया और वह चिल्ला उठा। मैं तुरन्त नीचे उतर गया और भगवान की प्रदक्षिणा करने चला गया। अँधेरे के कारण कोई भी मुझे पहचान नही पाया। यह सब करने के लिए मुझे ठाकुर ने ही बताया था। अब मुझे लगता है कि ऐसा साहसी कार्य मैं किस तरह कर पाया था! अपने जीवन में उन्होंने मुझे कई बार पुरी भेजा था। यह तो शरीर नहीं रहेगा, इस भाव से वे पुरी कभी भी नहीं गये थे। मैं पुरी से जब लौट आया, तो उन्होंने मुझे आलिंगन करते हुए कहा, 'मैंने भगवान जगन्नाथजी को ही आलिंगन किया है।' वे मुझे रथयात्रा के बाद जगन्नाथ का महाप्रसाद माँगने रेलवे स्टेशन भेजते। मैं भिखारी की तरह रथयात्रा से लौटे यात्रियों से प्रसाद माँगता। मुझे अच्छे घर का देख कोई-कोई प्रसाद दे देता। ठाकुर बड़े खुशी से वह ग्रहण करते थे। एक बार उन्होंने महाप्रसाद नरेन को दिया, पर अस्वच्छ देख, उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया। तब ठाकुर ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'देखो, जैसे औषधी का शरीर के ऊपर असर होता है, वैसे ही जगन्नाथ का प्रसाद खाने से ज्ञान, भक्ति और विश्वास प्राप्त होता है ।' तब नरेन ने वह प्रसाद ग्रहण किया। कभी-कभी तो वे नरेन को महाप्रसाद संदेश (मिठाई) में डालकर देते थे।

श्रीरामकृष्ण देव श्रीबुद्धदेव के प्रति : बुद्धदेव को ईश्वरावतार मानकर वे सदैव उनकी श्रद्धा तथा पूजा किया करते थे एवं पुरीधाम में अवस्थित श्रीजगन्नाथ-सुभद्रा-बलभद्ररूपी त्रिरत्नमूर्ति में श्रीभगवान् बुद्धावतार का प्रकाश अभी भी विद्यमान है, ऐसा उनका विश्वास था। श्रीजगन्नाथ के प्रसाद से भेद-बुद्धि विलुप्त होकर मानव जाति-बोधरहित हो जाता है, इस प्रकार का उस धाम का माहात्म्य सुनकर वहाँ जाने को वे समुत्सुक हुए थे। किन्तु वहाँ जाने से अपने शरीर-नाश की सम्भावना है, यह जानकर तथा योगदृष्टि की सहायता से इस बात को समझकर कि इस विषय में श्रीजगदम्बा का दूसरा ही अभिप्राय है, उन्होंने इस संकल्प को त्याग दिया था। श्रीरामकृष्ण देव का यह सदैव विश्वास था कि गंगावारि साक्षात् ब्रह्मवारि है। इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। इसी प्रकार का श्रीजगन्नाथदेव का प्रसादी अन्न-ग्रहण करने से मानव का विषयासक्त हृदय तत्काल ही पवित्र हो जाता है तथा वह आध्यात्मिक भाव को धारण करने योग्य बनता है, इस बात में भी उनका दृढ़ विश्वास था। जब उन्हें विषयी लोगों के साथ कुछ समय व्यतीत करने को विवश होना पड़ता था, तब वे उसके बाद ही किंचित् गंगाजल तथा 'आट्के' महाप्रसाद (श्रीजगन्नाथदेव के प्रसादी अन्न की हँड़िया को 'आट्के' कहा जाता है। अत: 'आट्के' महाप्रसाद का तात्पर्य अन्नमहाप्रसाद है।) लिया करते थे तथा अपने शिष्यवर्ग से भी ऐसा करने को कहते थे।

श्रीरामकृष्ण का भगवान जगन्नाथजी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा तथा भक्ति थी। इसका उल्लेख हमें श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में बार-बार मिलता है। यहाँ कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। दि. २९ मार्च, १८८३ राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द) बीमार हैं। उन्हीं की बात श्रीरामकृष्ण भक्तों से कह रहे हैं। श्रीरामकृष्ण – यह लो, राखाल बीमार पड़ गया। क्या सोडा पीने से अच्छा होता है? न जाने क्या होगा ! राखाल, तू जगन्नाथ का प्रसाद खा। यह कहते-कहते श्रीरामकृष्ण एक अद्भुत भाव में आ गये। ... श्रीरामकृष्ण ने ब्राह्मणी से एकबार कहा था, 'तुम पहले जगन्नाथजी का भात खाओ, फिर प्रसाद पाना।' ... चाँदनी घाट में गंगास्नान कर मणि (मास्टर महाशय) फिर श्रीरामकृष्ण के पास आये। दिन के आठ बजे होंगे। मणि लाटू से श्रीजगन्नाथजी का महाप्रसाद माँग रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण मणि के पास आकर कह रहे हैं – 'इसका (प्रसाद खाने का) नियमपूर्वक पालन करते रहना। जो लोग भक्त हैं, प्रसाद बिना पाये वे कुछ खा नहीं सकते।'

मणि – मैं बलराम बाबू के यहाँ से श्रीजगन्नाथ जी का

महाप्रसाद ले आया हूँ, कल से रोज दो-एक महाप्रसाद पा लिया करता हूँ। ... आज फाल्गुन की कृष्णा दशमी है, बुधवार, ११ मार्च, १८८५। आज दस बजे के लगभग दक्षिणेश्वर से आकर बलराम बसु के यहाँ श्रीरामकृष्ण ने जगन्नाथजी का प्रसाद ग्रहण किया। उनके साथ लाटू आदि भक्त भी हैं।

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) ने कहा था, 'दक्षिणेश्वर में रहते समय एक बार राखाल बीमार थे। ठाकुर

श्रीजगन्नाथ-सुभद्रा-बलभद्र

ने उन्हें कहा था, 'राखाल, तुम जगन्नाथ का प्रसाद खाओ, तुम ठीक हो जाओगे।' ऐसा है जगन्नाथ के महाप्रसाद का माहात्म्य ! क्या करें, तुम लोग विश्वास नहीं करते। ठाकुर कहा करते कि भोजन के पहले एक-दो दाने महाप्रसाद के खाने चाहिए। एक बार ठाकुर की भतीजी लक्ष्मी दीदी जब जगन्नाथजी के दर्शन हेतु पुरी गयी, तो मन्दिर में उन्होंने जगन्नाथजी की जगह ठाकुर का ही दर्शन पाया था। तब उनका विश्वास हो गया था कि जगन्नाथ और ठाकुर एक ही हैं। जगन्नाथजी ने उन्हें दर्शन देकर वही बात बतायी थी।

एक बार श्रीरामकृष्ण के साथ राखाल बलराम बाबू के घर गये थे। ठाकुर जलपान के लिए भीतर गये। लौट कर जब वे वापस आये, तो उन्होंने देखा की राखाल भगवान जगन्नाथ का प्रसादी खाजा ग्रहण कर रहे हैं । तब ठाकुर ने बच्चों के समान वह खाजा राखाल से छीन लिया और वह ग्रहण करने लगे। वह जूठा रहने के कारण राखाल ठाकुर से वह ग्रहण न करने की विनती कर रहे थे। पर ठाकुर ने थोड़ा और ग्रहण किया तथा बचा हुआ राखाल को लौटाते हुए कहा, 'जगन्नाथ का प्रसाद किसी का जूठा खाने से भी लाभ ही होता है।'

सन् १८८५ ई. की 'नवयात्रा' : रथयात्रा का पवित्र दिवस आया। नौ दिन तक रथोत्सव का आयोजन निर्धारित होने के कारण इसे 'नवयात्रा' कहते हैं। सन् १८८५ ई. की नवयात्रा के अवसर पर श्रीरामकृष्ण देव सायंकाल के बाद बागबाजार-स्थित श्रीयुत बलराम बाबू के घर पर रथोत्सव में सम्मिलित हुए तथा उस रात्रि को वहाँ रहकर दूसरे दिन प्रात:काल कुछ भक्तों के साथ नाव द्वारा दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर वापस आये। तत्पश्चात् 'उलटा रथ' के दिन (जिस दिन श्रीजगन्नाथजी रथ द्वारा पुन: अपने मन्दिर में वापस आते हैं) प्रात:काल श्रीरामकृष्ण देव पुन: बागबाजार-स्थित बलराम बाबू के घर गये थे तथा उस दिन एवं उसके दूसरे दिन भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक वहाँ अवस्थान कर तीसरे दिन प्रात:काल 'गोपाल की माँ' आदि भक्तों के साथ दक्षिणेश्वर लौटे।

बलराम बाबू के घर पर रथयात्रा के उत्सव में श्रीरामकृष्ण देव को लेकर आनन्द की धूम मची रहती थी। उस दिन भी सायंकाल के बाद ही श्रीजगन्नाथदेव के श्रीविग्रह को फूलमालाओं से सजाकर भीतर के मन्दिर से बाहर लाया गया तथा वस्त्र-पताकादि से सुसज्जित रथ पर विराजमान कर पुन: पूजन किया गया। बलराम बाबू के पुरोहितवंशज एवं श्रीरामकृष्ण देव के भक्त श्रीयुत फकीर ने पूजन किया। ... पूजन के पश्चात् संकीर्तन के साथ रथ खींचना प्रारम्भ हुआ। श्रीरामकृष्ण देव स्वयं रथ की रस्सी पकड़कर थोड़ी देर तक उसे खींचते रहे। तदनन्तर भावाविष्ट हो ताल के साथ-ही-साथ सुन्दर नृत्य करने लगे। उनके भावोन्मत्त हुंकार तथा नृत्य से मुग्ध हो, उस समय सब लोग आत्मविस्मृत हो भगवद्भक्ति में उन्मत्त हो गये ! बाहर दुमंजिले के चौकोर बरामदे की प्रदक्षिणा करते हुए बहुत देर तक इस प्रकार नृत्य-कीर्तनादि चलता रहा। रथ को खींचने के पश्चात् श्रीजगन्नाथदेव, श्रीगोविन्ददेव, श्रीराधारानी, श्रीमत् महाप्रभु तथा उनके परिकरवर्ग एवं अन्त में उनके भक्तवृन्दादि सभी का अलग-अलग नामोल्लेख कर उनका जय-जयकार कर प्रणाम करने के बाद कीर्तन समाप्त हुआ।

तदनन्तर श्रीजगन्नाथदेव के श्रीविग्रह को रथ से अवरोहण कराया गया तथा तीसरी मंजिल के कमरे में सात दिन के लिए उन्हें स्थानान्तरित कर इस आशय से विराजमान कराया गया कि मानो रथ पर आरूढ़ हो श्रीजगन्नाथदेव अन्यत्र आये हुए हैं, सात दिन बाद वहाँ से पुन: रथारूढ़ हो अपने पहले स्थान को गमन करेंगे। श्रीजगन्नाथदेव के श्रीविग्रह को यहाँ विराजमान कराकर उनका भोग लगाया गया। फिर श्रीरामकृष्ण देव ने तथा बाद में भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण देव तथा योगेन रात में बलराम बाबू के घर पर ही रहे। अन्य भक्तों में से अधिकांश लोग अपने-अपने घर चले गये। ... दूसरे दिन प्रात:काल आठ या नौ बजे नाव लायी गयी, तब श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर लौटे। नाव आने के बाद श्रीरामकृष्ण देव मकान के अन्दर गये और जगन्नाथदेव को प्रणाम कर तथा स्वयं भी भक्त परिवारवर्ग का प्रणाम ग्रहण कर बाहर निकल आये।

बलराम बाबू के घर पर आडम्बररहित भक्तिपूर्ण रथोत्सव-अनुष्ठान : बलराम बाबू के घर पर श्रीजगन्नाथदेव की सेवा थी, अत: रथ के दिन उत्सव मनाया जाता था। किन्तु उसमें बाह्य आडम्बर कुछ भी नहीं होता था, सब कुछ भक्तिपूर्ण अनुष्ठान के रूप में सम्पन्न होता था। मकान को सुसज्जित करना, बाजे इत्यादि की व्यवस्था, निरर्थक भीड़, कोलाहल, दौड़-धूप आदि का कोई प्रश्न ही नहीं था। बाहर के दुमंजिले के चौकोर बरामदे पर एक छोटा-सा रथ खींचा जाता था। एक कीर्तनमण्डली बुलायी जाती थी। रथ के साथ उस मण्डली का कीर्तन होता था एवं श्रीरामकृष्ण देव तथा उनके भक्तवृन्द उस कीर्तन में सम्मिलित होते थे। किन्तु वह कितना अपूर्व आनन्द था, क्या अद्भुत भगवद्भक्ति का प्रवाह, कैसा विह्वल भाव तथा कितना सुन्दर श्रीरामकृष्ण देव का मधुर नृत्य था ! अन्यत्र इनका मिलना सम्भव ही कहाँ था? सात्त्विक परिवार की विशुद्ध भक्ति से प्रसन्न हो साक्षात् श्रीजगन्नाथदेव श्रीविग्रह तथा श्रीरामकृष्ण देव के शरीर में आविर्भूत होते थे, इस प्रकार का अपूर्व दर्शन और कहाँ सम्भव था? भक्तों का तो कहना ही क्या, इस विशुद्ध प्रेमस्रोत में निमज्जित होकर पाखण्डी का हृदय भी द्रवीभूत होकर अश्रुरूप से प्रवाहित होने लगता था। इस प्रकार कुछ देर तक कीर्तन होने के बाद श्रीजगन्नाथदेव का भोग लगता था तथा श्रीरामकृष्ण देव के भोजन के उपरान्त भक्तवृन्द प्रसाद ग्रहण किया करते थे। तदनन्तर रात्रि अधिक होने पर वह आनन्दमेला समाप्त होता था एवं दो-चार भक्तों के अतिरिक्त सब लोग अपने-अपने घर लौट जाते थे। ... यहाँ पर सन् १८८५ ई. की 'पुनर्यात्रा' (रथयात्रा के सात दिन बाद पुन: रथारूढ़ होकर जिस दिन श्रीजगन्नाथदेव अपने मन्दिर में प्रत्यावर्तन करते हैं, उसे पुनर्यात्रा कहा जाता है।) की ही हम चर्चा कर रहे हैं। श्रीरामकृष्णदेव इस उपलक्ष्य में बलराम बाबू के घर पर उपस्थित हो दो दिन वहाँ रहकर तीसरे दिन प्रात:काल आठ-नौ बजे नाव द्वारा दक्षिणेश्वर लौटे थे।

सन् १८८५ ई. की रथयात्रा : श्रीरामकृष्ण बलराम के बैठकखाने में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। आज आषाढ़ की शुक्ला प्रतिपदा है, सोमवार, जुलाई १८८५, सबेरे ९ बजे का समय होगा। कल रथ-यात्रा है। रथ-यात्रा के उपलक्ष्य में बलराम ने श्रीरामकृष्ण को आमन्त्रित किया है। उनके घर में श्रीजगन्नाथजी की नित्य सेवा हुआ करती है। एक छोटा-सा रथ भी है। रथ-यात्रा के दिन रथ बाहर के बरामदे में चलाया जायेगा। ... दोपहर को श्रीरामकृष्ण ने जगन्नाथजी का प्रसाद पाया। श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'बलराम का अन्न शुद्ध है।'

...पिछला प्रहर हो आया। इस समय बरामदे में श्रीजगन्नाथदेव का वही छोटा रथ ध्वजा-पताकाओं से सुसज्जित करके लाया गया है। श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलराम चन्दन-चर्चित तथा वसन-भूषण और पुष्पमालाओं से सुशोभित हैं। श्रीरामकृष्ण बनवारी का कीर्तन छोड़कर बरामदे में रथ के सामने चले गये। साथ-साथ भक्तगण भी गये। श्रीरामकृष्ण ने रथ की रस्सी पकड़ जरा खींचा, फिर रथ के सामने भक्तों के साथ नृत्य और कीर्तन करने लगे। छोटे बरामदे में रथ चलने के साथ ही कीर्तन और नृत्य हो रहा है। उच्च संकीर्तन और खोल का शब्द सुनकर बहुत से बाहर के लोग वहाँ आ गये। श्रीरामकृष्ण भगवत्प्रेम से मतवाले हो रहे हैं। भक्तगण प्रेमोन्मत्त हो साथ-साथ नाच रहे हैं।

... दि. ३ जुलाई, १८८४ पुनर्यात्रा दिन : श्रीरामकृष्ण बलराम बाबू के बैठकखाने में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। श्रीमुख पर प्रसन्नता झलक रही है, भक्तों से बातचीत कर रहे हैं। आज रथ की पुनर्यात्रा है, दिन बृहस्पति है, ३ जुलाई, १८८४, आषाढ़ की शुक्ला दशमी। श्रीयुत बलराम के यहाँ जगन्नाथजी की सेवा होती है, एक छोटा-सा रथ भी है। उन्होंने पुनर्यात्रा के उपलक्ष्य में श्रीरामकृष्ण को निमन्त्रण भेजा था। यहाँ छोटा रथ, घर के बाहरवाले दुमंजिले बरामदे

में चलाया जाता है। गत २५ जून बुधवार को रथयात्रा का प्रथम दिन था। ... अब श्रीरामकृष्ण बलराम के अन्त:पुर में श्रीजगन्नाथ-दर्शन करने के लिए जा रहे हैं। वहाँ की स्त्रियाँ उनके दर्शन के लिए व्याकुल हो रही हैं। श्रीरामकृष्ण फिर बैठकखाने में आये। हँस रहे हैं, कहा, ''मैं शौच को गया था, कपड़े बदलकर श्रीजगन्नाथ के दर्शन किये और कुछ फूल-दल चढ़ाये। ... इतने में छोटा रथ बाहर के दुमंजिले वाले बरामदे में लाया गया। श्रीजगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा देवी पर अनेक प्रकार की फूल-मालाएँ पड़ी हुई उनकी शोभा बढ़ा रही हैं। सब नये-नये अलंकार और नये-नये वस्त्र धारण किये हुए हैं। बलराम की सात्त्विक पूजा होती है। उसमें कोई आडम्बर नहीं किया जाता। बाहर के आदमियों को जरा भी खबर नहीं कि भीतर रथ चल रहा है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ रथ के सामने आये। उसी बरामदे में रथ खींचा जायेगा। श्रीरामकृष्ण ने रथ की रस्सी पकड़ी और कुछ देर खींचा। फिर गाने लगे। (भावार्थ) – ''श्रीगौरांग के प्रेम की हिलोरों में नदिया डावाडोल हो रहा है।'' श्रीरामकृष्ण नृत्य कर रहे हैं। भक्तगण भी उनके साथ नाचते हुए गा रहे हैं। कीर्तनिया वैष्णवचरण भी सब में मिल गये। देखते ही देखते सारा बरामदा भर गया। स्त्रियाँ भी पासवाले कमरे से यह सब आनन्द देख रही हैं। मालूम हो रहा था कि श्रीवास के घर में भगवत्प्रेम से विह्वल होकर श्रीगौरांग भक्तों के साथ नृत्य कर रहे हैं। मित्रों के साथ पण्डितजी भी रथ के सामने खड़े हुए इस नृत्य-गीत का दर्शन कर रहे हैं। अभी शाम नहीं हुई है। श्रीरामकृष्ण बैठकखाने में चले आये। भक्तों के साथ आसन ग्रहण किया।

रथयात्रा, पुरी

ठाकुर के बचपन की घटना : कामारपुकुर के धनाढ्य जमींदार श्री लाहाबाबू के घर श्राद्ध के निमित्त धर्मसभा का आयोजन था। सभा में अनेक गणमान्य पंडित उपस्थित थे। सभा में अचानक एक ब्राह्मण युवक आकर खड़ा हुआ। उसने सारे पंडितों को उद्देश्य कर कहा, 'मुझे बीस साल से पेट दर्द की पीड़ा है। मैंने सब प्रकार की औषधि-चिकित्सा की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए बाबा तारकनाथ के चरणों में धरना देकर बैठ गया। बाबा तारकनाथजी ने रात को सपने में दर्शन दिये और कहा, 'तुम्हारे गाँव के बाहर एक गोमांस भक्षक चाण्डाल रहता है। तुम स्नानादि करके भक्तिभाव से चाण्डाल को प्रणाम कर उसका चरणामृत ग्रहण करो तथा सादर उसका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करो। इसी से तुम्हारा रोग दूर होगा।' किन्तु हे पण्डितगण, ऐसा आचरण करने पर समाज मुझे बहिष्कृत करेगा। अब आप लोग ही बतायें कि मैं कैसे बाबा तारकनाथ की आज्ञा का पालन करूँ, जिससे मेरा रोग भी दूर हो जाये और मुझे बहिष्कृत भी न होना पड़े।''

पंडितों का इस विषय पर गहन तर्क आरम्भ हुआ। इस सभा में बालक गदाधर भी था। उसने पंडितों के सामने आकर विनम्रता से कहा, ''आप अगर अनुमति दें, तो मैं कुछ कहना चाहता हूँ।'' पण्डितों से अनुमति मिलने पर बालक गदाधर ने कहा, ''अगर वह व्यक्ति उस चाण्डाल को लेकर पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ पुरी जाए और उसे भगवान जगन्नाथ का प्रसाद देकर उसका उच्छिष्ट अन्नप्रसाद ग्रहण करे, तो बाबा तारकनाथ के आदेश का पालन होगा एवं जाति बहिष्कृत भी न होना पड़ेगा।'' बालक का विचार सुनकर पंडितगण अचम्भित हो गए। बालक गदाधर को आशीर्वाद देकर उन्होंने कहा, ''बेटा, तुम असाधारण व्यक्ति हो ! तुममें हम जगद्गुरु के लक्षण देख रहे हैं। भविष्य में यह प्रमाणित होगा।'' ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (१)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।१।।

महाबाहो (हे अर्जुन!) भूयः (फिर) एव (से) मे (मेरे) परमम् वचः (परम वचन) शृणु (को सुन) यत् अहम् (जिसे मैं) ते प्रीयमाणाय (तुझ प्रिय के) हितकाम्यया (हित की इच्छा से) वक्ष्यामि (कहूँगा)।

''हे अर्जुन! फिर से मेरे परम वचन को सुन, जिसे मैं तुझ प्रिय के हित की इच्छा से कहूँगा।''

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षिणां च सर्वशः।।२।।

मे प्रभवः (मेरी उत्पत्ति को) न सुरगणाः विदुः (देवता लोग नहीं जानते) न महर्षयः (न महर्षिजन ही) हि अहम् (क्योंकि मैं) सर्वशः देवानाम् (सब देवताओं) च महर्षीणाम् (और महर्षियों) आदिः (से पहले उत्पन्न हुआ हूँ)।

''मेरी उत्पत्ति को न देवतालोग और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब देवताओं और महर्षियों से पहले उत्पन्न हुआ हूँ।''

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।३।।

यः (जो) माम् (मुझको) अजम् (अजन्मा) अनादिम् (अनादि) च लोकमहेश्वरम् (और ईश्वर) वेत्ति (रूप से जानता है) सः मर्त्येषु (वह मनुष्यों में) असम्मूढः (ज्ञानी) सर्वपापैः (समस्त पापों से) प्रमुच्यते (मुक्त हो जाता है)।

''जो मुझको अजन्मा, अनादि और ईश्वर रूप से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।''

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।।४।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।।५।।

बुद्धिः (बुद्धि) ज्ञानम् असम्मोहः क्षमा सत्यम् (ज्ञान, अमूढ़ता, क्षमा, सत्य) दमः शमः (इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह) सुखम् दुःखम् भवः अभावः च भयम् अभयम् च (सुख-दुख उत्पत्ति-प्रलय, भय-अभय तथा) अहिंसा समता तुष्टिः तपः दानम् यशः अयशः (अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति, अपकार्ति) भूतानाम् पृथग्विधाः भावाः (प्राणियों के ये विभिन्न भाव) मत्तः एव भवन्ति (मुझसे ही होते हैं)।

''बुद्धि, ज्ञान, अमूढ़ता, क्षमा, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह, सुख, दुख, उत्पत्ति, प्रलय, भय, अभय, तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति, अपकीर्ति, प्राणियों के ये विभिन्न भाव मुझसे ही होते हैं।''

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।६।।

सप्त महर्षयः (सप्तर्षिजन) पूर्वे चत्वारः (उनके पूर्व चार सनकादि) तथा मनवः (तथा चौदह मनुलोग) मद्भावाः (मेरे भाव) मानसाः (मेरे संकल्प से) जाताः (पैदा हुए हैं) येषाम् लोके (जिनकी संसार में) इमाः प्रजाः (यह प्रजा है)।

''सप्तर्षिजन, उनके पूर्व चार सनकादि तथा चौदह मनु ये मेरे भाव, मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसार में यह प्रजा है।''

अविकम्प योग का अर्थ

पिछली बार हमने दसवें अध्याय के सातवें श्लोक तक की चर्चा की थी और यह कहा था कि भगवान कृष्ण अर्जुन को अपनी विभूति के सम्बन्ध में और अपने योग के सम्बन्ध में विस्तार से बतलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है जैसा सातवें श्लोक में उनका अपना वचन है :

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।७।।

यः (जो) मम एताम् विभूतिम् (मेरी इस विभूति) च योगम् (और योग को) तत्त्वतः वेत्ति (तत्त्व से जानता है) सः अविकम्पेन योगेन (वह अविकम्पयोग से) युज्यते (युक्त हो जाता है) अत्र न संशयः (इसमें संशय नहीं है)।

''जो मेरी इस विभूति और योग को तत्त्व से जानता है, वह अविकम्पयोग से युक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।''

मेरी इस विभूति और योग को जो तत्त्व से जान लेता है, वह अविकम्पयोग से युक्त हो जाता है। इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है। यहाँ पर जो विभूति का वर्णन है, उसके माध्यम से भगवान वही उपाय हमको समझा रहे हैं जिसके द्वारा उनके साथ न टूटने वाला एक बन्धन स्थापित हो जाए। विभूति और योग का तात्पर्य हमने पिछली बार देख लिया था। विभूतिसम्पन्न इस संसार के साथ भगवान का विस्तार। और योग? अपनी योगमाया से भगवान इस विश्व संसार को प्रकट करते हैं। वे इसे किस प्रकार प्रकट करते हैं, इस पर भी हमने पिछली बार चर्चा की थी, जहाँ पर भगवान अर्जुन से कहते हैं कि ये जितने भी देवता हैं, मनुष्य के भीतर जितने भी भाव उत्पन्न हुआ करते हैं, ये सारे के सारे भाव मैं ही उनके भीतर प्रेरित करता हूँ। अपनी चर्चा में हमने स्पष्ट किया था कि भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव, जो मन में उठा करते हैं, उन भावों को हमारा देखने का तरीका कैसा होना चाहिए। बहानेबाजी न हो। यदि अच्छे भाव मन में नहीं उठते, तो भगवान से ही शिकायत करनी चाहिए कि इन अच्छे-बुरे भावों को आपने ही तो बनाया है। ये बुरे भाव भी तुम्हारे ही कारण मन में उठते हैं। प्रभु से इस प्रकार शिकायत का भाव रखने से धीरे-धीरे ये बुरे भाव दूर हो जाते हैं और भगवान के साथ युक्त होने का एक बहुत ही सक्षम कारण बन जाते हैं। किन्तु इस तरह की प्रार्थना हमें हार्दिक रूप से करनी चाहिए।

भगवान हमारी भावनाओं के भी प्रेरक

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।८।।

अहम् (मैं) सर्वस्व प्रभवः (ही सब कुछ को उत्पन्न करता हूँ) मत्तः सर्वम् प्रवर्तते (मुझसे ही यह सब प्रवर्तित हुआ है) इति मत्वा (ऐसा जान करके) बुधाः भावसमन्विताः (बुद्धिमान और भक्तजन) माम् भजन्ते (मुझे भजते हैं)।

''मैं ही सब कुछ को उत्पन्न करता हूँ, मुझसे ही यह सब प्रवर्तित हुआ है, ऐसा जान करके भक्त और बुद्धिमान जन मुझे भजते हैं।''

मैं ही सब कुछ को उत्पन्न करता हूँ। मैं सबका कारण हूँ। मत्तः सर्व प्रवर्तते – मुझमें से यह सब कुछ प्रवर्तित हुआ है। दोनो बातें एक-सी ही दिखती हैं। थोड़ा सा जो सूक्ष्म अन्तर है, उसको निकालने का प्रयत्न करेंगे। इति मत्वा – ऐसा जान करके, भजन्ते माम् -मेरा भजन करते हैं, मेरी उपासना करते हैं। कौन लोग करते हैं? बुधाः -बुद्धिसम्पन्न लोग, जो विवेकी हैं। कैसे? भावसमन्विताः – मेरे लिए उनके मन में भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और वे मेरा भजन करते हैं, मेरी उपासना करते हैं। भगवान सातवें श्लोक में ये विचार व्यक्त करते हैं। यहाँ दो प्रकार की बातें हैं। जैसे हम ये कहेंगे कि कुम्हार घड़े को बनाता है। इसको हम दो प्रकार से प्रकट कर सकते हैं। एक तो यह कि मिट्टी का लोंदा लेकर कुम्हार ने घड़ा तैयार किया और यह भी कह सकते हैं कि मिट्टी का यह जो आकार है, वह आकार उस कुम्हार के भीतर से प्रवर्तित हुआ। कुम्हार ने उस आकार को प्रेरणा दी। तात्पर्य यह हुआ कि उपादान कारण और निमित्त कारण। भगवान यह कहते हैं कि एक तो मिट्टी से घड़ा बना, यह हो गया उपादान कारण। पर घड़े को बनाने के लिए एक निमित्त की भी जरूरत होती है। और निमित्त है वह कुम्हार। कुम्हार प्रेरणा देता है एक आकार बनाने के लिए और वह मिट्टी आकार ग्रहण करती है। ठीक इसी प्रकार भगवान कहते हैं, अहं सर्वस्व प्रभवः – मैं सबका कारण हूँ। सभी कुछ मुझसे प्रवर्तित होता है। मनुष्य के भीतर, जीवों के भीतर, भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। अर्जुन ! वे सब मुझसे प्रेरित हुई हैं। मानो प्रेरणा भी मैं ही देता हूँ और आकार भी मैं ही देता हूँ। यह भगवान कहते हैं। ऐसा जो जान लेता है। कैसा जान लेता है? जो भी संसार में कुछ आकार दिखाई देता है, वह सारा का सारा भगवान से

निकला है। यह एक बात है और दूसरी यह कि मेरे भीतर जो भावनाएँ उठा करतीं हैं मैं उन भावनाओं से प्रेरित होकर कर्म करता हूँ, संसार के अन्य सब प्राणी अपनी-अपनी जिन भावनाओं से प्रेरित होकर कर्म करते हैं, वे सारी की सारी प्रेरणाएँ, सारी की सारी भावनाएँ भगवान से ही प्रवर्तित होती हैं। इस प्रकार जिसने दृढ़ रूप से जान लिया, उसे बुद्धिमान या विवेकी कहा जाता है। ऐसा जो विवेकी है, वह अभ्यास के द्वारा बारम्बार अपने मन पर संस्कार करता है कि जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सब भगवान की प्रेरणा से हो रहा है। ऐसा बारम्बार मन पर संस्कारित करने का वह प्रयास करता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३१६ का शेष भाग

होने का, धन से राजा का, मौन से दीनता का, बल से शत्रुओं का, शरीर से मृत्यु का और संसार की सभी वस्तुओं से मनुष्य को भय है। वैराग्य ही ऐसा है, जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं। उन्होंने राजपाट प्रधानमंत्री को सौंपकर भाई विक्रमादित्य को राजगद्दी पर बिठाने को कहा।

संसार में जितने भी नाते-रिश्ते हैं या सम्बन्ध बनाए जाते हैं, वे क्षणिक होते हैं। आसक्ति या कामना पापों का मूल है। सभी भोग्य वस्तुएँ अनित्य व दुःखद होती हैं। उनके त्याग से ही सुख की अनुभूति हो सकती है। योगी ऐसा त्याग करने में सक्षम हैं। योगी और भोगी में अन्तर यह है कि योगी सद्गुणों का पुञ्ज होने से दिव्य और पवित्र बनना चाहता है, जबकि भोगी की अनन्त इच्छाएँ होती हैं, जो कभी तृप्त नहीं होतीं। बाद में वह पाप के गर्त में गिरता है। ○○○

पृष्ठ ३२२ का शेष भाग

हैं और उनके सुस्थिर बैठ जाने पर सभी बैठ जाती हैं, उसी प्रकार वाणी, मन, नेत्र और कर्ण ने (किया) । वे (उसके माहात्म्य-बोध से) प्रसन्न होकर प्राण की स्तुति करने लगीं।

भाष्य – स च प्राणः तेषाम् अश्रद्दधानताम् अलक्ष्य अभिमानात् ऊर्ध्वम् उत्क्रमते इव इदम् उत्क्रान्तवान् इव स-रोषात् निरपेक्षः तस्मिन् उत्क्रामति यत् वृत्तं तत् दृष्टान्तेन प्रत्यक्षीकरोति।

भाष्यार्थ – वह मुख्य प्राण, उन (इन्द्रियों) की श्रद्धाहीनता को देख, नाराज तथा निरपेक्ष होकर, अभिमानपूर्वक मानो ऊपर की ओर उठने को तैयार हुआ। उसके ऊपर की ओर उठने को तैयार होने पर जो घटित हुआ, उसको (श्रुति) दृष्टान्त के द्वारा दिखाती है।

भाष्य – तस्मिन् उत्क्रामति सति अथ अनन्तरम् एव इतरे सर्वे एव प्राणाः चक्षुः आदयः उत्क्रामन्ते उच्चक्रमिरे। तस्मिन् च प्राणे प्रतिष्ठमाने तूष्णीं भवति अनुत्क्रामति सति सर्व एव प्रातिष्ठन्ते तूष्णीं व्यवस्थिता अभूवन्। तत् तत्र यथा लोके मक्षिकाः मधुकराः स्वराजानं मधुकर-राजानम् उत्क्रामन्तं प्रति सर्वा एव उत्क्रामन्ते तस्मिन् च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्ते प्रतितिष्ठन्ति।

भाष्यार्थ – जब वह उठने लगा, तो उसके तत्काल बाद ही अन्य सभी चक्षु आदि प्राण (इन्द्रियाँ) उठ गये और उस (मुख्य प्राण) के स्थिर या शान्त हो जाने पर सभी (प्राण) चुपचाप स्थिर हो गये। इस विषय में, जैसे संसार में मधुमक्खियाँ अपने स्वयं के राजा के उड़ जाने पर, (बाकी) सभी उड़ जाती हैं और उस (राजा) के बैठ जाने पर सभी (पुनः) बैठ जाती हैं।

भाष्य – यथा अयं दृष्टान्तः एवं वाक् मनः चक्षुः श्रोत्रं च इत्यादयः ते उत्सृज्य अश्रद्दधानतां बुद्ध्वा प्राण-माहात्म्यं प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति स्तुवन्ति।।४।।

भाष्यार्थ – जैसे यह दृष्टान्त है, वैसे ही वाणी, मन तथा नेत्र आदि इन्द्रियाँ भी अश्रद्धा को त्यागकर, प्राण की महत्ता को जानकर, प्रसन्नतापूर्वक प्राण की स्तुति करने लगीं।।२०।। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (३१)

स्वामी शाश्वतानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

रविवार को अद्वैत आश्रम बन्द रहता था, तो प्राय: प्रति रविवार सुबह से सन्ध्यारती तक मैं बेलूड़ मठ में व्यतीत करता था। उस समय मठ में कई वरिष्ठ संन्यासी जीवित थे, जो श्रीमाँ, स्वामीजी, राजा महाराज और महापुरुष महाराज के शिष्य थे। उनलोगों से ठाकुर के शिष्यों की कितनी पुरानी बातें सुनी थीं, यदि वह दैनन्दिनी में लिखकर रखता, तो एक अमूल्य सम्पत्ति का संरक्षण होता। जो बातें मुझे प्रेरणा देतीं, उनको मैं अपने दैनन्दिनी में लिखता था।

स्वामी शाश्वतानन्द (१८९४-१९६३) (सुरेश महाराज) लेगेट हॉउस (बेलूड़ मठ) के दक्षिण ओर के कमरे में रहते थे। वे रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव थे। लेगेट हॉउस के मध्य वाले कमरे में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के चार ब्रह्मचारी रहते थे। मन्मथ महाराज (स्वामी सत्यव्रतानन्द जी) उनमें से एक थे। वे अद्वैत आश्रम के ब्रह्मचारी थे। मैं जब उनके साथ वार्तालाप कर रहा था, तब सुरेश महाराज ने कहा, ''आज यहाँ पर कैसे?'' ''महाराज, आज हमलोगों का अवकाश है, इसलिए मठ में आया हूँ।'' ''अवकाश! अवकाश ! साधु जीवन में अवकाश ! किसी प्रकार का कोई नैतिक अवकाश नहीं होता। तुम्हारे क्षणभर के चूक से ३० वर्ष की तपस्या नष्ट हो सकती है।'' महाराज की बातें सुनकर मैं घबरा गया। उस समय (१९६०) मैं नया-नया ही मठ में सम्मिलित हुआ था। सुरेश महाराज में बाहर से भाव कठोर होने पर भी उनके अन्दर का भाव बहुत कोमल था। वे सदैव साधु-ब्रह्मचारियों को बहुत स्नेह करते और किसी महन्त महाराज द्वारा उनलोगों के विरुद्ध कुछ कहने पर वे उनमें संशोधन करके उनकी सहायता किया करते थे।

महाराज प्रतिदिन सन्ध्या समय ठाकुर मन्दिर की पूर्व दिशा में भ्रमण करते थे और युवा-साधुओं के जीवनगठन के प्रसंग में बताते थे।

जून, १९६०

महाराज के साथ घूमते-घूमते मैंने उनसे पूछा, ''बाहरी लोगों से हमलोगों को किस प्रकार मिलना होगा?'' सुरेश महाराज ने कहा, ''जितना आवश्यक हो, उतना ही। छोटे वृक्ष को घेरा लगाकर रखना होता है, परवर्तीकाल में उसकी जड़ों में पशु बाँध देने पर भी उसका कुछ नहीं होता। ऐसा विचार करो कि तुमको एक अस्पताल में एक सेवक के रूप में भेजा गया। तुमको वहाँ पर आपातकालीन वार्ड में मरहम-पट्टी का कार्य मिला। किसी युवती के पैर को तुम प्रतिदिन साफ करके पट्टी बाँधते हो। तुम अपने कर्तव्य का पालन करना, नहीं तो क्या तुम उसको प्रेम-पत्र लिखोगे?'' महाराज का खुले मन से इस प्रकार की बातें सुनकर मैं हतप्रभ हो गया।

स्वामी शाश्वतानन्द जी महाराज

तदुपरान्त उन्होंने कहा, ''देखो, साधु-जीवन एक आदर्श-जीवन है। आदर्श को ठीक रखना। आवश्यकता के अतिरिक्त और कुछ करने नहीं जाना। सदैव स्वयं की रक्षा करना।''

एक अन्य दिन प्रशिक्षण केन्द्र के सम्बन्ध में उन्होंने कहा, ''देखो, कई महन्त महाराज बेलूड़ मठ के प्रशिक्षण केन्द्र के विरुद्ध थे, क्योंकि उनको सेवकों का अभाव होता। हमलोगों ने निश्चय किया कि दो वर्ष तक युवकों को कार्य से हटाकर प्रशिक्षण केन्द्र में केवल शास्त्र-अध्ययन, रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का पठन-पाठन, जप-ध्यान करने का सुयोग देना होगा। तुमलोग यदि नहीं जानोगे, तो दूसरे को किस प्रकार सिखाओगे? देख रहे हो न, धनी व्यक्ति अपने लड़के-लड़कियों को रामकृष्ण मिशन के विद्यालय-महाविद्यालयों में शिक्षा के लिए भेजते हैं। वे लोग जानते हैं कि यहाँ पर अच्छी शिक्षा प्राप्त करने पर उनके लड़के उनकी सम्पत्ति की रक्षा कर पायेंगे। ठीक उसी प्रकार, यदि हमलोग तुमलोगों को अच्छी तरह से

ठाकुर के आदर्श की शिक्षा नहीं देंगे, तो तुम लोग ठाकुर के आध्यात्मिक सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर पाओगे।''

तत्पश्चात् ठाकुर-स्वामीजी का भाव किस प्रकार संसार में प्रचारित करना होगा, इसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा, ''देखो, तुम्हारे सन्दूक में हीरा, जवाहरात, सोना, रुपया पड़ा हुआ है, किन्तु कोई जानता नहीं है। इस बहुमूल्य धन का मूल्य क्या? अक्षय धन को सारा जीवन सम्हालकर रखो, फिर आयेगी मृत्यु। ठाकुर की अमर और अमूल्य वाणी को सम्पूर्ण संसार के कल्याण हेतु प्रचार-प्रसार करना होगा।

''एक घटना सुनो। स्विटजरलैण्ड से एक व्यक्ति घड़ी विक्रय करने के लिए निकला। उस समय लोग घड़ी का उपयोग करना नहीं जानते थे। उस व्यक्ति ने एशिया के विभिन्न देशों में घड़ी वितरित किया और कहा, ''तुम लोग इसका उपयोग करो। समय का मूल्य कितना है, समझो। यदि तुमलोगों को पसन्द नहीं आयेगा, तो मैं वापस आते समय घड़ी ले लूँगा। तुमलोगों को कुछ भी रुपया देना नहीं होगा।'' एक वर्ष के पश्चात् देश वापस जाते समय घड़ी-विक्रेता द्वारा घड़ी का उपयोग करनेवालों के पास से घड़ी वापस माँगने पर, उन लोगों ने घड़ी वापस नहीं करके घड़ियों का क्रय कर लिया। वे लोग घड़ी का मूल्य समझ गये थे। निश्चय ही, दो-चार व्यक्तियों ने घड़ी वापस कर दी थी।

''उसी प्रकार, हमलोगों को ठाकुर-स्वामीजी की वाणी को सम्पूर्ण संसार में फैलाना होगा। कोई स्वीकार करेगा, तो कोई नहीं करेगा। ठाकुर का भाव तथा वाणी अवश्य ही समस्त मानवों के लिए मंगलकारी होगा। ठाकुर के भाव से प्रेरित हमारे पवित्र आदर्श जीवन को देखकर मनुष्य प्रेरित होकर ठाकुर के भाव को ग्रहण करेंगे।''

सुरेश महाराज के साथ मुझे तीन-चार वर्ष तक सत्संग करने का सुयोग मिला था। वे कट्टर वेदान्ती थे। वे गौड़पाद के अजातवाद को बहुत पसन्द करते थे। मैंने उनको किसी भी दिन ठाकुर मन्दिर में प्रणाम करते हुए नहीं देखा। इन संन्यासियों को पहचानना बहुत कठिन है। उनलोगों में से कई लोग प्रदर्शन करनेवाली भक्ति को पसन्द नहीं करते थे।

उन्होंने एक दिन मुझसे कहा, ''देखो, आत्मा मुक्त है, यह बात उचित नहीं लगती है। आत्मा न तो बद्ध है और न ही मुक्त है। आत्मा क्या है बताया नहीं जा सकता। इस संसार में जो लोग रहते हैं, उनके लिए ही दिन-रात का प्रश्न है तथा सुख-दुख इत्यादि का द्वन्द्वात्मक प्रश्न उठता है। किन्तु जो लोग सूर्यलोक में रहते हैं, वे लोग अनादिकाल से ही ज्योतिर्मण्डल में निवास करते आ रहे हैं। उन लोगों के पास वही एकात्मक, एकरस 'ज्योति:' जिस ज्योति में इस प्रकार का बोध नहीं। क्योंकि उनलोगों में अन्धकार की कोई धारणा ही नहीं है।''

मई-जून, १९६३ ई. में महाराज को हृदय-रोग की समस्या होने लगी। वे कोलकाता के P.G. Hospital (वर्तमान में सेठ सुखलाल कारनानी अस्पताल) में भर्ती हुए। अद्वैत आश्रम से मैं प्राय: ही उनको देखने जाता था। आवश्यकता पड़ने पर उनके वस्त्र धो देता था। एक दिन उन्होंने परिहास करते हुए कहा, ''देखो, मेरा हृदय इतना बड़ा हो गया है कि यह अस्थिपंजर उसको पकड़कर नहीं रख पा रहा है।''

उनके मेज पर शिल्पकार N.C. Das द्वारा निर्मित ठाकुर-श्रीमाँ के चित्र को देखा। प्रति सन्ध्या कई भक्त-नर्स आकर, 'खण्डन भवबन्धन' गाया करतीं और महाराज आँखें बन्द करके सुनते रहते। मैं सोचता, उन कट्टर वेदान्ती के भीतर ठाकुर और श्रीमाँ विराजमान हैं ! तत्पश्चात् एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, ''मेरे पास स्वामीजी का चित्र नहीं है। क्या तुम N.C. Das के पास से मेरे नाम पर स्वामीजी का एक चित्र ले आ सकते हो?'' मैं अस्पताल से सीधा बहुबाजार N.C. Das के घर गया। वे महापुरुष महाराज के शिष्य थे। सुरेश महाराज स्वामीजी का चित्र चाहते हैं, यह सुनकर वे कितने आनन्दित हुए। N.C. Das ने मुझसे कहा, ''मैं कल ही स्वामीजी का चित्र बनाकर महाराज के पास पहुँचा दूँगा।''

मेरे पास सुरेश महाराज के कई पत्र हैं। ये पत्र स्वामी अखिलानन्द और अन्यान्य संन्यासियों को लिखे गये थे। सारदा मठ, दक्षिणेश्वर हेतु जमीन खरीदने के लिए उन्होंने अमेरिका के संन्यासियों से रुपये माँगे थे। स्वामीजी की इच्छा थी कि महिलाओं के लिए मठ हो। इस इच्छा की पूर्ति हेतु सुरेश महाराज ने बहुत परिश्रम किया था। इन पत्रों का ऐतिहासिक महत्त्व है।

१९६३ ई. में सम्पूर्ण विश्व में स्वामीजी का जन्मशताब्दी-समारोह चल रहा है। अस्पताल में उन्होंने मुझसे कहा, ''देखो, डॉक्टर ने कहा है – मेरा हृदय बृहत् हो गया है।'' यही साधु का लक्षण है। हृदयवान् साधु स्वामी शाश्वतानन्द जी महाराज ने २७/०८/१९६३ को शरीर-त्याग किया। वे एक अद्भुत संन्यासी थे ! **(क्रमशः)**

पुरस्कार प्राप्त हुआ

साउथ इंडियन एजूकेशन सोसायटी, मुम्बई ने रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ को प्रचार और प्रकाशन कार्यों के लिये '**श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती नेशनल एमीनेन्स एवार्ड**' प्रदान किया। इसमें उस संस्था के द्वारा एक प्रमाण पत्र, एक बड़ा कांस्य दीप, दो प्रतिमाएँ, कुछ पुस्तकें और ढाई लाख रूपये का चेक प्रदान किया गया।

लुसाका में सार्वजनिक उत्सव

रामकृष्ण वेदान्त सेन्टर, लुसाका, जाम्बिया में २४ अप्रैल, २०२१ को सन्ध्या ५.३० से ७.३० बजे तक सार्वजनिक उत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें १२० भक्त उपस्थित थे। कार्यक्रम में रामचरितमानस पाठ, रामलीला और रामायण पर व्याख्यान हुआ।

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों ने अपने-अपने क्षेत्रों में राहत-कार्य में निम्नलिखित वस्तुएँ वितरित कीं–

असम : **गोहाटी** : १३ फरवरी को ७५ कम्बल। **करीमगंज** : १ दिसम्बर से १२ जनवरी के बीच १०८० कम्बल। १५ फरवरी को करीमगंज शहर में आग लगने से हुई दुर्घटना में राहतार्थ, करीमगंज केन्द्र ने १७ फरवरी को तीन आहत परिवारों के बीच में ४ किलो दाल, १० पैकेट बिस्कुट, ३ साड़ी, १ शर्ट, ४ कम्बल, ४ शॉल, ३ सेट बर्तन एवं मच्छरदानी। **सिल्चर** : १५ दिसम्बर से ४ जनवरी के बीच १००० कम्बल।

पश्चिम बंगाल : आँटपुर : १ अक्टूबर से ६ फरवरी के बीच ५४० साड़ियाँ, १६५ धोतियाँ, १५३ सेट बालकों हेतु वस्त्र एवं १५० बेड कवर और ३०० कम्बल। **बलराम मन्दिर, कोलकाता** : ४ फरवरी को २०० साड़ियाँ। **बामुनमुड़ा** : ३१ जनवरी को २०० साड़ियाँ। **बारानगर मिशन, कोलकाता** : २१ एवं २३ फरवरी को २०० साड़ियाँ। **बारासात** : २७ दिसम्बर से २६ जनवरी, ५६ धोतियाँ एवं ४८९ साड़ियाँ। **श्यामसयेर, वर्धमान** : २६ दिसम्बर एवं ४ फरवरी को २०० जैकेट।

गुराप : १० एवं २५ फरवरी को १५० साड़ियाँ, ७० विभिन्न वस्त्र, १०० स्कूल बैग, १०० पेन, १०० पेन्सिल, ४०० नोटबुक, १८० पैकेट बिस्कुट, २०० चॉकलेट एवं १०० छाते। **काशीपुर, कोलकाता :** २४ जनवरी से १० फरवरी १००० साड़ियाँ। **अद्वैत आश्रम, कोलकाता** : १३ दिसम्बर से २५ जनवरी के बीच २२५ कम्बल। **बामुनमुड़ा :** ३१ जनवरी को ७० शॉल। **चाँदीपुर** : २० दिसम्बर से १२ जनवरी के बीच, २५० कम्बल। **जलपाइगुड़ी** : १६ जनवरी को ८० कम्बल। **जयरामबाटी** : २० दिसम्बर से २० जनवरी के बीच, ५०० कम्बल। **कोआलपाड़ा** (जयरामबाटी का उपकेन्द्र) - १३ दिसम्बर से १४ जनवरी के बीच ५२५ कम्बल। **तमलुक** - १९ एवं २१ जनवरी को १०० कम्बल।

बिहार : रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा : १७ से २४ फरवरी २०० साड़ियाँ।

झारखण्ड : **रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर :** २१ जनवरी एवं २ फरवरी को, २०० साड़ियाँ। **जामताड़ा** : ३ एवं १३ फरवरी को २०० मच्छरदानी एवं २०० साड़ियाँ।

उत्तर प्रदेश : **रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर :** जनवरी में १० साड़ियाँ और ५ कम्बल।

उत्तराखण्ड : **रामकृष्ण मठ, ऋषिकेश :** २३ जनवरी एवं ४ फरवरी को १२० कम्बल एवं १२० स्वेटर।

उड़िसा : रामकृष्ण मिशन आश्रम, पुरी : फरवरी में ४० कम्बल।

हिमाचल प्रदेश : **रामकृष्ण मिशन आश्रम, शिमला,** दिसम्बर एवं जनवरी में ४४ स्वेटर।